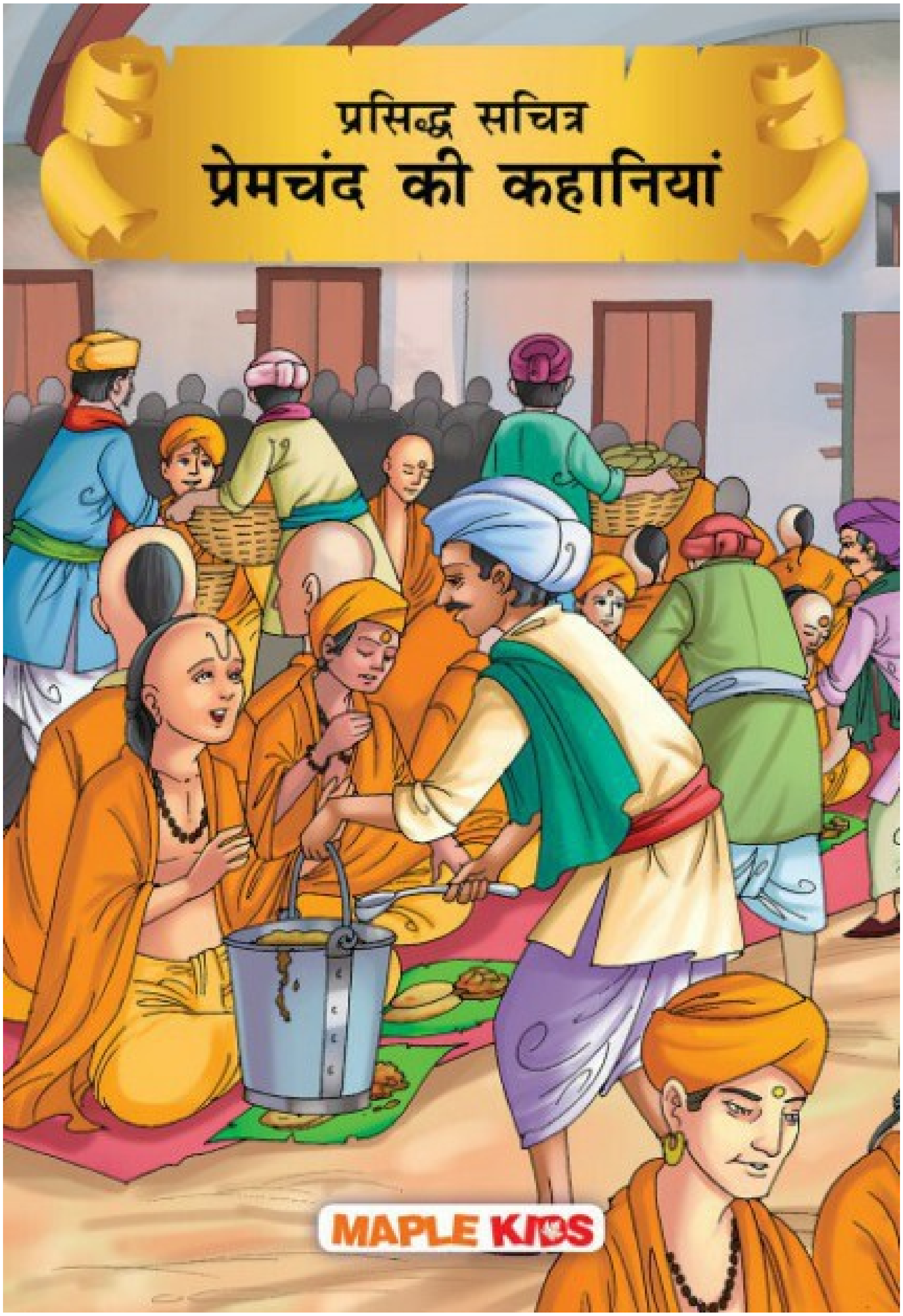
प्रसिद्ध सचित्र
प्रेमचंद की कहानियां



MAPLE KIDS


प्रसिद्ध सचित्र
प्रेमचंद की कहानियां
MAPLE KIDS

Famous Illustrated Tales of
PREMCHAND (HINDI)

Published in 2019 by

Maple Press Private Limited
Corporate & Editorial Office
A 63, Sector 58, Noida 201 301, U.P., India
phone +91 120 455 3581, 455 3583
Email: info@maplepress.co.in
Website: www.maplepress.co.in

विषय-सूची

1. पंच परमेश्वर
2. पूस की रात
3. दो बैलों की कथा
4. स्वत्व रक्षा
5. गुप्त धन
6. बेटों वाली विधवा
7. विध्वंस
8. सौभाग्य के कोड़े
9. सच्चाई का उपहार
10. कौशल
11. ईदगाह
12. नमक का दारोगा

पंच परमेश्वर

जुम्मन शेख और अलमू चौधरी का धर्म भले ही अलग था पर उनकी यह दोस्ती छुटपन से ही थी।

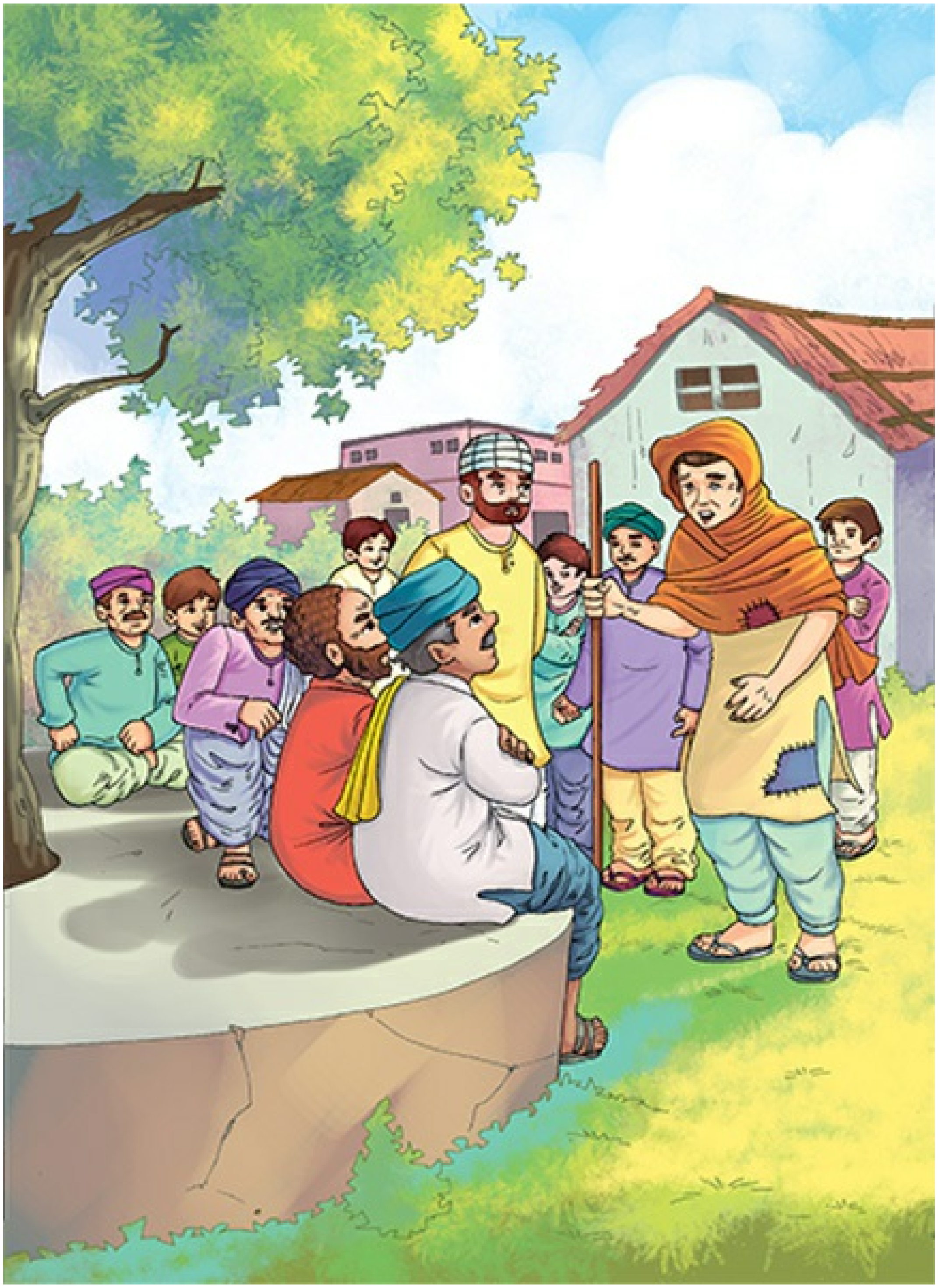
जुम्मन शेख की एक खाला (मौसी) थीं जिनका जुम्मन के अलावा कोई दूसरा न था। वह जुम्मन के साथ ही रहती थीं। पहले उनकी खूब आवभगत होती थी। पर जब से खालाजान की सारी जायदाद जुम्मन ने अपने नाम लिखवा ली तब से खाला रोटी के साथ कड़वी बातों के तीखे सालन करीमन (जुम्मन की पत्नी) को देने लगी। कुछ समय तक खाला सहती रहीं पर असह्य होने पर उसने पंचायत बिठाने का निर्णय लिया।

झुकी हुई पीठ को लाठी के सहारे खींचती हुई खाला ने पूरे गांव को पंचायत का न्यौता दिया था। अलमू चौधरी को उसने विशेष आग्रह से बुलाया था। सभी एक पेड़ के नीचे एकत्रित हुए।

पंचायत का कार्य शुरू हुआ। पंचों के सामने खाला ने अपना पक्ष रखा, "मैंने अपनी जायदाद तीन साल पहले जुम्मन के नाम कर दी। जीवन भर मुझे रोटी-कपड़ा देना इसने कुबूल किया था। अब रोज-रोज की किट-किट मुझसे नहीं सही जाती। न पेट की रोटी मिलती है और न ही तन का कपड़ा। मेरी गलती हो तो बताओ, बस अब तुम पंचों का ही सहारा है।"

जुम्मन से पंच चुनने को कहा गया। उसने यह जिम्मेदारी खाला को दे दी। खाला ने अलमू चौधरी को सरपंच चुना। अलमू ने ऐतराज करना चाहा क्योंकि जुम्मन उसका मित्र था पर खाला ने ईमान का वास्ता दे दिया और अलमू को सरपंच बनना पड़ा।

कहा जाता है कि पंच में परमेश्वर का वास होता है। न्याय का न कोई मित्र होता है न दुश्मन। यही स्थिति, अलमू की, सरपंच की कुर्सी पर बैठने पर हुई। अलमू ने दोनों पक्षों की बात सुनी और अपना फैसला सुनाया, "पंचों ने विचार किया है कि खालाजान को महीने का खर्च दिया जाना चाहिए। उनकी जायदाद से इतना मुनाफा अवश्य होता है कि खर्च दिया जा सके। यदि जुम्मन खर्च न दे सके तो खाला की जायदाद उन्हें वापस कर दी जाए।"



फैसला सुनते ही जुम्मन सकते में आ गया। मित्रता की जड़ ही मानो हिल गई हो, मन ही मन वह बदला लेने की सोचने लगा था और उसे अवसर भी शीघ्र ही मिल गया।

अलमू के पास बहुत ही सुंदर, बड़े-बड़े सींगों वाले, एक जोड़ा बैल थे। देवयोग से एक बैल पंचायत के महीने भर बाद ही मर गया। अकेला बैल किस काम का? जोड़ा ढूंढने पर भी

न मिला तो अलमू ने गांव के समझू साहू के पास उसे बेचना उचित समझा। साहू जी के पास इक्का गाड़ी जिसमें लादकर गांव का सामान गुड़-घी मंडी ले जाते थे और मंडी से नमक, तेल लाकर गांव में बेचते थे।

चौधरी से बात की, मोल भाव किया, एक माह में बैल की कीमत देने का वादा कर बैल को घर ले आए। नया बैल पाकर समझू साहू ने उसे रोदना शुरू कर दिया। दिन में तीन-तीन, चार-चार चक्कर कराने लगे। उन्हें न चारे की फिक्र थी, न पानी की, और यदि बैल का दम फूलता, आनाकानी करता तो डण्डों की बरसात झेलता। उधर चौधरी के घर उसे काम कभी-कभार और खाना भरपूर मिलता था। थोड़े ही दिनों में उसकी हड्डियां निकल आईं थीं।

एक दिन चौथा चक्कर था। साहू ने दुगना बोझ लाद दिया था। दिन भर का थका हारा, पैर न उठते थे। साहू जी कोड़े फटकारने लगे। दम लगाकर बेचारा भागा, पैर लड़खड़ाए, जो गिरा तो उठ न पाया। साहू जी ने बहुत पीटा, टांग खींच, नथुनों में लकड़ी ठूंसी पर सब बेकार... वह मर चुका था। दूर-दूर तक सन्नाटा, सामान लेकर घर कैसे जाए... चिंतित साहू ने वहीं रात को रुकने की सोची। आधी रात तक जगे रहे पर जब सुबह आँख खुली तो तेल के पीपे और टैंट में बंधा रुपया भी गायब पाया। सिर पीटा, पछाड़ खाई और किसी तरह घर पहुँचे।

कई महीने बीतने के बाद भी साहू अलमू को पैसे देने की बात पर ही गाली-गलौज करने लगता था। बात बहुत बिगड़ जाने पर गांववालों ने दोनों को पंचायत करने की सलाह दी। आखिरकार संध्या समय पंचायत बैठी। पंच चुनने की बारी आई। अलमू से पूछा गया तो उन्होंने समझू साहू को पंच चुन लेने को कहा।

समझू साहू ने अकड़कर कहा- “जुम्मन शेख मेरी ओर से।”

जुम्मन का नाम सुनते ही अलमू चौधरी का कलेजा बैठने लगा। पर जुम्मन के लिए स्वीकृति दे दी और जुम्मन सरपंच नियुक्त हो गए।

बदले की आग में जलते हुए जुम्मन ने जब सरपंच का उच्च पद संभाला तो सहसा उन्हें उनके दायित्व का ज्ञान हो गया। उनके सामने अब केवल न्याय था। दोनों पक्षों से सवाल-जवाब करने के बाद उन्होंने अपना फैसला सुनाया, “अच्छी तरह विचार कर पंच इस फैसले पर पहुँची है कि समझू को बैल का पूरा दाम देना चाहिए। जिस समय बैल लिया गया था उस समय उसे कोई बीमारी न थी। अगर तभी दाम दे दिया जाता तो आज यह विवाद ही नहीं होता। बैल की मृत्यु का कारण- उससे कठिन परिश्रम लिया जाना तथा उचित चारे-दाने का प्रबंध् न किया जाना है।” फैसला अलमू ने सुना। खुशी से सराबोर उठकर जोर से बोले- पंच परमेशवर की-जय! चारों ओर से पंच परमेश्वर की जय की प्रतिध्वनि होने लगी...

थोड़ी देर बाद जुम्मन ने आकर अलमू को गले लगाया और बोले- मैं तुम्हारा जानी दुश्मन बन गया था। पर आज पंच के पद पर बैठकर जाना कि उस समय न्याय के अलावा और कुछ नहीं सूझता है। मुझे क्षमा कर दो मेरे भाई! अलमू भी रोने लगे। अश्रुधारा बह चली... और उस जल ने दोनों के मन का मैल धो डाला... उनकी प्रेम लता फिर से लहलहाने लगी।

पूस की रात

एक गांव में हल्कू नाम का मजदूर रहता था पर हल्कू का शरीर उसके नाम से विपरीत भारी भरकम था। पेशे से मजदूर होने के कारण दिन भर में जो कमाता खा लेता। उसकी पत्नी थी मुन्नी, जो उसके साथ मजदूरी में बराबर का साथ देती थी। हल्कू का एकमात्र साथी था कुत्ता, उसका नाम जबरा था, जो किसी हाल में उसका साथ नहीं छोड़ता था।

जीवन बस किसी तरह चल रहा था। बड़ी कठिनता से दोनों ने पाई-पाई जोड़कर 3 रुपए सर्दियों के लिए कम्बल खरीदने को बचाए थे। पूस की सर्दी... उधर खेत में फसल तैयार खड़ी थी। सर्द रातों में तन की रक्षा के बिना वह फसल की रक्षा कैसे करता... कम्बल खरीदने ही वाला था कि अपनी उधारी मांगने सटना आ गया। न चाहते हुए भी गाली के भय से, बचाए हुए तीन रुपए सटना को देने पड़े।

रात हुई, हल्कू पूस की अंधेरी काली-ठंडी रात में अपनी मड़ैया पर पहरा देने चला गया। उसका कुत्ता जबरा उसके साथ ही था। ओढ़ने के लिए उसके पास बस उसकी पुरानी चादर (थोड़ी मोटी चादर) थी। उसे ही ओढ़कर, बांस की खाट पर गन्ने के खेत में बैठ गया। जबरा भी कूं-कूं करता हुआ खाट के नीचे बैठा था। दोनों का ही सर्दी से बुरा हाल था।

समय बिताने के लिए हल्कू ने चिलम पी पर तब भी चुभती सर्दी से नींद आँखों से कोसों दूर थी। सहनशक्ति ने जवाब देना शुरू कर दिया तो उसने जबरे को उठाकर अपनी गोद में सुला लिया। जबरे की देह से आती दुर्गंध् भी आज उसे दुर्गंध् नहीं लग रही थी... बल्कि जबरे की गर्मी से थोड़ी राहत अवश्य मिली। सहसा किसी आहट को सुनकर, अपने स्वभाव के अनुकूल जबरा झपटकर उठा और थोड़ी दूर पर खड़ा होकर भौंकने लगा। हल्कू के बुलाने पर भी वापस नहीं आया।



किसी प्रकार घंटा बीता, रात और गहरा गई थी, शीतल हवा से रक्त मानो धमनियों में जमने सा लगा था। अभी पहर से ऊपर रात बाकी थी। हल्कू उठकर आम के बाग में गया। पतझड़ के कारण नीचे पत्तों का ढेर लगा था। अरहर के झाड़ को उखाड़कर उसे झाड़ू बनाकर पत्ता बुहारा। सुलगते उपले से उसमें आग लगाई। सूखे पत्ते धू-धू कर जलने लगे। आग देख

जबरु भी वहीं आकर बैठ गया।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग तापने लगा।

धीरे-धीरे रक्त पिघला, शरीर में थोड़ी गर्मी आई, उसने दोनों पैर फैला लिए। पत्तियों ने जितनी जल्दी आग पकड़ी उतनी ही जल्दी जलकर शांत भी हो गई। हल्कू चादर ओढ़कर वहीं पसर गया। आलस्य ने उसे आ दबोचा। अचानक कुछ आहट हुई और जबरा भूंककर खेत की ओर भागा।हल्कू को महसूस हुआ कि जानवरों का झुंड खेत में आया है। शायद नीलगाय का झुंड था। थोड़ी देर में चरने और उछलने-कूदने की भी आवाजें आईं। हलकू ने वहीं पड़े-पड़े हांक लगाई- लिटो-लिटो!! जबरा लगातार भौंक रहा था। हल्कू उठा, पर सर्द हवा के झोंके चुभने लगे। वह फिर से अलाव के पास आकर आग कुरेदकर स्वयं को गरमाने लगा और धीरे-धीरे वहीं लेट कर सो गया।अगली सुबह मुन्नी के उठाने पर उठा, चारों ओर धूप फैल चुकी थी। मुन्नी ने डांट लगाई, “तुम यहाँ रम गए और सारा खेत चौपट हो गया।”

हल्कू ने उससे रात में भयंकर पेट दर्द उठने का झूठा बहाना बनाया। दोनों खेत पर आए। सामने सारा खेत रौंदा पड़ा था। मुन्नी उदास थी पर हल्कू भीतर-ही-भीतर प्रसन्न था क्योंकि उसे अब सर्द रातें यहाँ मड़ैया के नीचे नहीं गुज़ारनी पड़ेंगी।

दो बैलों की कथा

किसी गांव में झूरी नामक किसान रहता था। उसके पास दो बैल थे- हीरा और मोती। नाम की ही तरह उनके गुण भी थे। देखने में सुंदर, काम में चौकस और डील-डौल में लंबे-चौड़े। बड़े ही प्यार तथा भाईचारे से दोनों रहते और जी-जान से झूरी की मदद करते थे। झूरी भी उन पर पुत्रवत स्नेह रखता था।

खेत जुताई का मौसम आया। झूरी ने पत्नी के कहने पर दोनों बैलों को अपनी ससुराल भेज दिया। अपना घर-द्धार छोड़ बैल किसी भी हाल में जाना नहीं चाहते थे। पर जाना पड़ा। संध्या समय उन्हें नए घर में सानी लगाकर दी गई पर दोनों ने नांद में मुंह भी नहीं डाला। उनका दिल बहुत भारी था। दोनों बैल यों ही लेट गए। रात बीतने पर, जब चारों ओर सन्नाटा छा गया, दोनों ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर एक ही झटके में रस्सियां तोड़ डालीं और अपने घर भाग चले। सीधा घर पहुँचकर दोनों ने दम लिया।

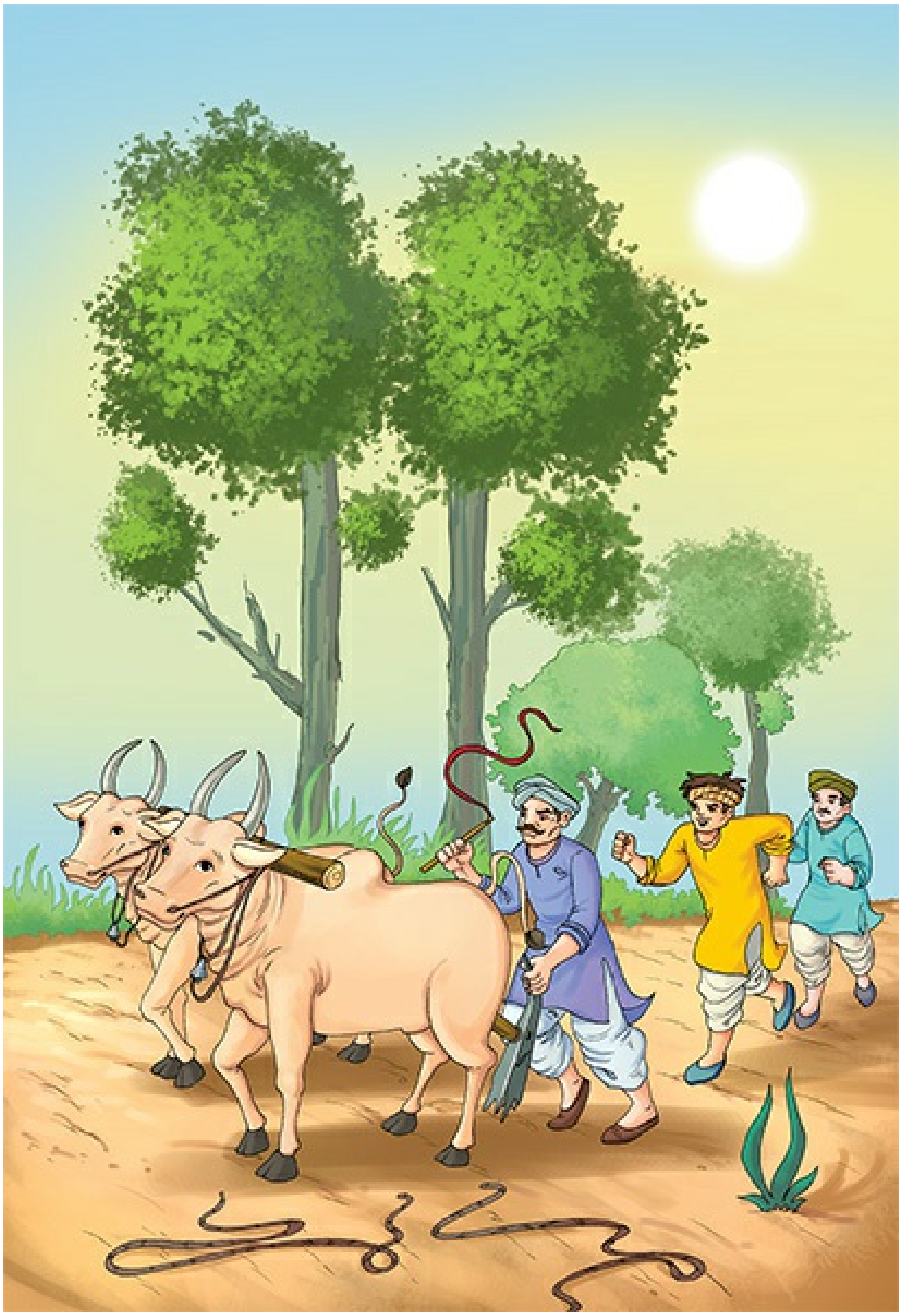
सुबह झूरी ने चरनी पर खड़े बैलों को देखा तो प्रसन्न होकर दौड़कर उन्हें गले लगा लिया। पर झूरी की पत्नी को बैलों का यों भाग आना अच्छा न लगा और उसने बैलों को नमकहराम की संज्ञा दे दी। क्रोधवश उसने बैलों को सूखा भूसा खाने को दिया। खली और चोकर के बिना सूखा भूसा कभी हीरा-मोती ने खाया ही नहीं था। दोनों असमंजस में थे और आशा भरी आँखों से मालिक की ओर देखते रहे।

अगले दिन सुबह झूरी का साला आया और नाड़ी में जोतकर दोनों बैलों को ले गया। घर पहुँचकर मोटी रस्सियों से उन्हें बांध् दिया और सूखा भूसा खाने को डाल दिया।

अगली सुबह गया ने दोनों को हल में जोता, पर दोनों ने खेत जोतने से ही इन्कार कर दिया। गया ने बहुत मारा, मारते-मारते थक गया पर दोनों ने पांव ही नहीं उठाया। एक बार हीरा की नाक पर डंडे की भयंकर चोट लगी तो दर्द से कराहता हीरा अपने क्रोध् को रोक न पाया और बदहवास से दोनों बैल भागने लगे। हल, रस्सी, जुआ, जोत सब टूट-टाट कर बराबर हो गया।

आगे-आगे बैल और पीछे-पीछे गया दो आदमियों के साथ डंडे लेकर दौड़ रहा था। बैलों को पकड़ लिया गया और गया उन्हें घर ले गया।

शाम के समय फिर सूखे भूसे से ही उनका स्वागत हुआ। दोनों ने उसकी ओर देखा भी नहीं। रात में एक छोटी लड़की दो रोटी लेकर आई और उसने बैलों को सहलाकर एक-एक रोटी दोनों को खिलाई। सौतेली माँ उसे मारा करती थी शायद इसीलिए इन बैलों से उसकी आत्मीयता हो गई थी।



एक दिन उस बालिका ने बैलों का पगहा खोलकर उन्हें भगा दिया। वे वापस अपने घर जाना चाहते थे, पर बदहवासी के कारण रास्ता भूल गए। काफी दूर भागते-भागते थक तो गए ही थे, कई दिनों से ढंग से खाया भी नहीं था। सामने ही मटर का खेत दिखाई दिया। दोनों चरने लगे। थोड़ी देर में रखवाले ने उन्हें पकड़ लिया और प्रातःकाल दोनों को कांजी हौस के

हवाले कर दिया।

कांजी हौस का नजारा कुछ और ही था। वहाँ कई भैंसें, घोड़े, बकरियां, गधे पहले से ही बंद थे। कमजोर इतने कि उनमें खड़े होने की भी शक्ति शेष न थी। दोनों टकटकी लगाए दरवाजे की ओर देखते रहे पर न ही खाना आया और न ही कोई व्यक्ति आया।

बाड़े की दीवार कच्ची थी। हीरा और मोती ने अपने नुकीले सींग मार-मार कर कच्ची दीवार गिरा दी। दीवार के गिरते ही कमजोर पड़े जानवरों में न जाने कहाँ की शक्ति आ गई। सभी जान हथेली पर लेकर भाग उठे। हीरा के गले की रस्सी कुछ मोटी ही थी और मजबूत खूंटे से बंधी थी। उसने मोती से भाग जाने का आग्रह किया पर मोती को अपने मित्र को छोड़कर जाना गंवारा न था। वह नहीं गया। शोर होने पर चौकीदार तथा अन्य कर्मचारियों की खलबली देखने लायक थी। मोती की खूब पिटाई हुई और अब मोटी रस्सी उसके गले में भी बांध् दी गई।

पूरे सप्ताह दोनों मित्र वहीं निराहार बंधे पड़े रहे। बस पानी मिलता था। दुर्बलता के कारण अब उठना भी कठिन होने लगा था।

एक दिन बाड़े के पास डुगडुगी बजने लगी, लोगों की भीड़ इकट्ठी हो रही थी। कमजोर, मृतप्राय बैलों को भला कौन खरीदता... पर एक लाल आँखों वाले दढ़ियल व्यक्ति ने अंततः इन्हें खरीद लिया। कठोर चेहरे वाला वह व्यक्ति दोनों को लेकर जाने लगा। हीरा और मोती की बोटी-बोटी कांप रही थी। डंडे के डर से भयभीत दोनों उस दढ़ियल के साथ चले जा रहे थे।

सहसा दोनों को ऐसा लगा कि राह परिचित है। उनके शरीर में शक्ति का संचार होने लगा। उन्हें अपना कुआं दिखाई दिया। अचानक आँखों ही आँखों में दोनों ने इशारा किया और एक साथ झटके से भाग खड़े हुए। दोनों कुलांचे भरते हुए अपने थान जाकर खड़े हो गए। झूरी बैठा धूप सेंक रहा था। दौड़कर अपने बैलों से लिपट गया। अविरल अश्रुधारा बहने लगी। बैलों ने झूरी को चाटना शुरू किया और झूरी उनसे लिपटा उन्हें सहलाता रहा। इसी बीच दढ़ियल ने आकर बैलों की रस्सी पकड़ ली और अपना अधिकार जताने लगा। तू-तू मैं-मैं होने लगी। दढ़ियल बैलों को जबरदस्ती अपने साथ ले जाना चाहता था पर मोती ने उसे सींग मारा और फिर उसे खदेड़कर भगा दिया।

झूरी उन्हें वापस पाकर गद्गद् हो रहा था। आज कितने दिनों बाद उन्हें फिर से खली, भूसा, दाल, चोकर खाने को मिला था और ऊपर से झूरी का प्यार भरा स्पर्श। झूरी की आँखों से प्रेमाश्रु बह रहे थे और हाथ हीरा और मोती को सहला रहे थे। तीनों के परस्पर प्रेम को देखकर झूरी की पत्नी भी गद्गद् होकर दौड़कर हीरा-मोती से लिपट गई। उसकी आँखें भी नम थीं।

स्वत्व रक्षा

मीर दिलावर अली कचहरी में मोहर्रिर (लिखने वाला) थे। शहर के बाहर करीब तीन किलोमीटर दूर उनका मकान था। उनके पास एक बड़ी रास का कुम्मैत घोड़ा था। पलटन से सस्ते दामों पर नीलामी के समय इस घोड़े को उन्होंने खरीदा था। पिछले तीन वर्षों से वह मीर साहब की ही सवारी में था। सईस का इंतजाम करना कठिन था, मीर साहब स्वयं ही सवेरे-शाम उसकी देखभाल करते थे।

यों घोड़ा था बड़ा ही स्वाभिमानी। मीर साहब प्यार से उस पर हाथ फेरते, उसे चारा खिलाते, रविवार को उसे नहलाते और हरा चारा खिलाते। घोड़ा भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता और प्रतिदिन नियत समय पर मीर साहब को कचहरी पहुँचा दिया करता था। रविवार उसके भी आराम का दिन होता था। वह उस दिन आराम से हरी घास खाता, छप्पर के नीचे बंधा रहने से धूप से बचता... आज के दिन वह टस से मस नहीं होता था। एकाध् बार मीर साहब ने प्रयत्न किया भी था पर बेकार... घोड़े ने मुंह में लगाम तक न ली। उसके आत्म सम्मान को हानि पहुँचाना अपने अवयवों से हाथ धोना था। अंततः मीर साहब ने अपनी हार स्वीकारने में ही भलाई समझी।

मीर साहब के पड़ोसी थे मुंशी सौदागरलाल जी। यों तो उनका कचहरी से कोई संबंध् न था- न ही मुहर्रिर थे और न ही कर्मचारी पर वकील समाज में उनका बड़ा मान था। मीर साहब से भी खासी मित्रता थी।

जेठ का महीना था और शादियों की धूम थी। बाजेवालों, आतिशबाजों, भांड, कटारों सभी के भाव चढ़े हुए थे। मुंशीलाल के पुत्र की शादी भी इसी लगन में होनी थी। सभी इंतजाम किए जा चुके थे। अंत समय में कहारों ने बयाना लौटा दिया। पालकी का प्रबन्ध् न हो पाया। मुंशी जी ने हर संभव प्रयत्न किया पर विफल रहे। छह बजे शाम को बारात चलने का मुहूर्त था। बारात को तीन किलोमीटर दूर स्टेशन पहुँचाना था। तभी मुंशी जी को मीर साहब के घोड़े की याद आई। वह मीर साहब के पास पहुँचे।

मीर साहब- आपको मालूम नहीं आज इतवार का दिन है।

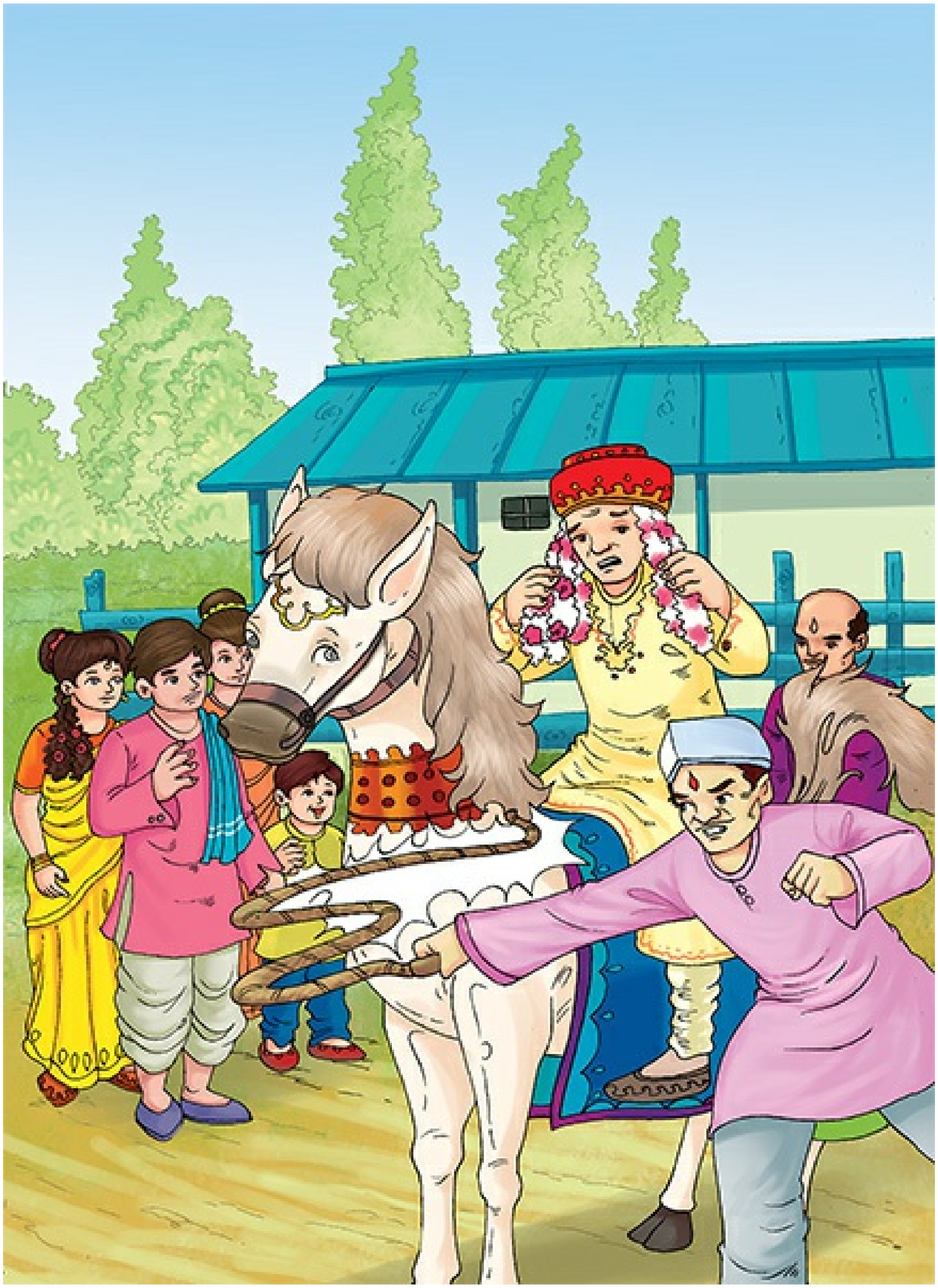
मुंशी जी- मालूम क्यों नही, पर आखिर घोड़ा ही ठहरा। कौन सा दूर जाना है। किसी न किसी तरह स्टेशन पहुँचा ही देगा।

मीर साहब- यों आपका जानवर है, ले जाइए। पर मुझे उम्मीद नहीं कि वह आज पुट्ठे पर हाथ रखने देगा।

मुंशी जी- मार के डर से तो भूत भी भागता है जी। आप डरते हैं इसलिए बदमाशी करता है...

मीर साहब- अच्छी बात है... अगर आपने उसकी ज़िद तोड़ दी तो मैं आपका एहसान मानूंगा।

मुंशी जी शान से अस्तबल पहुॅचे। उन्हें देखते ही घोड़ा हिनहिनाया। बाजे की आवाज उसे उत्तेजित कर रही थी। चतुर खिलाड़ी तो मुंशी जी थे ही। तुरंत घर से दाना मंगवाया और घोड़े के सामने रख दिया। रुचिपूर्वक दाना खाकर घोड़े ने कृतज्ञ नेत्रों से मुंशी जी को देखा मानो चलने को तैयार हो। पांच बज गए थे। सभी घोड़े का इंतजार कर रहे थे। लगाम डालने के लिए मुंशी जी ने घोड़े को पुचकारा, पीठ सहलाई, दाना खिलाया पर घोड़े ने मुंह ही न खोला। उन्होंने हारकर नथुनों पर चाबुक तड़ातड़ मारा, खून निकलने लगा। घोड़े ने इधर-उधर देखा... मानो मीर साहब को ढूंढ रहा हो... न जाने ओर कितनी मार खानी पड़े इस डर से उसने लगाम ले ली। मुंशी जी जीत गए, पीठ पर जीन कस दी गई और दूल्हा सवार हो गया। वर के सवार होते ही स्त्रियों का मंगल गान शुरू हो गया, फूलों की वर्षा हुई और बारात के लोगों ने प्रस्थान किया। मगर घोड़े ने तो कदम न बढ़ाने की मानो कसम खा रखी थी। उसने हिलकर न दिया। मुंशी जी का क्रोध् आपे से बाहर हो रहा था। उन्होंने घोड़े के पीछे के पैरों पर मारा, आगे के पैरों पर मारा पर घोड़ा न हिला।



वहाँ उपस्थित मित्र, घोड़े की जिद तोड़ने की अलग-अलग युक्तियां सुझाने लगे। एक ने पूंछ के पास जलता कुंदा जलाने की बात की- पूंछ जल गई, घोड़ा उछला पर चला नहीं। दाना डाला गया, शराब मंगाई गई पर उसने वह भी न छुआ।

किसी मित्र की युक्ति के अनुसार खाद फेंकने वाली दुपहिया गाड़ी पर किसी तरह उसके

आगे के दो पैर चढ़ाए गए और लोगों ने गाड़ी खींचना शुरु किया। करीब सौ मीटर घोड़ा खिसका पर लोगों की शक्ति गाड़ी को आगे खींचने की शेष न रही। स्टेशन तो तीन किलोमीटर था। इतनी दूर गाड़ी कौन खींचता। घोड़े को वर ने एड़ लगाई, चाबुक मारा पर घोड़े ने अपनी कसम न तोड़ी। उसके नथुनों से खून रिस रहा था, चाबुकों से शरीर छिल गया था, पैरों में डंडों ने घाव बना दिया था पर वह द्दढ़-प्रतिज्ञ अपनी आन पर अड़ा था।

मुंशी जी क्रोधोन्मत्त होकर रो पड़े, मुहूर्त टल गया था, वर को भूमि पर उतारना अपशकुन होता, निंदा होती, कुल को कलंक लगता पर अब पैदल चलने के अलावा कोई उपाय न था। कुंठित होकर घोड़े के सामने आकर बोले- भाग्य मनाओ कि मीर साहब के पास हो। मैं मालिक होता तो तुम्हारी हड्डी पसली का आज पता भी न चलता। बेटा, चलो अब हम पैदल ही चलें। बारात स्टेशन पहुँच रही है। कोई हंसने वाला नहीं है। हम दस-बारह आदमी ही बचे हैं। तुम रंगीन कपड़े बदल लो मैं अड़ियल घोड़े को मीर साहब के हवाले करके आता हूँ।

गुप्त धन

शहर के पास ही बाबू हरिदास का ईंटों का भट्टा था। उसमें आस-पास के गांवों के सैकड़ों स्त्री-पुरुष, लड़के प्रतिदिन काम करने आते थे। उनका काम भट्टे से ईंटों को उठाकर ऊपर कतार में सजाना था और बदले में उन्हें कौड़ियां मिलती थीं। एक ईंट- एक कौड़ी... सभी अधिक से अधिक कौड़ी के लोभ में अधिक से अधिक ईंटें उठाया करते थे। उनमें एक लड़का अपने हमउम्र लड़कों से दुगनी ईंटें उठाता था। वह न खेलता, न मुस्कराता, बस गम्भीरतापूर्वक अपना काम करता रहता। बाबू हरिदास कभी-कभी उसे अधिक कौड़ियां तथा कुछ खाने को दिला दिया करते थे।

एक दिन बाबू हरिदास ने उसे पास बुलाकर उसका हाल जाना। वह बेसहारा था। घर में वृद्धा माँ थी जो कि बिस्तर पर थी। किसी समय उनका परिवार धन-धान्य सम्पन्न था। जमीन थी, लेन-देन होता था, शक्कर का कारखाना चलता था। पर भाइयों की स्पर्द्धा और विद्वेष का नतीजा, आज रोटियों के लाले थे। लड़के का नाम मगनसिंह था। काम के बाद घर जाकर वही रोटियां बनाता था तथा माँ की देखभाल भी करता था। बाबू हरिदास ने मगनसिंह को अपना नौकर बना लिया। उसे कौड़ियां बांटने का काम दे दिया तथा मुंशी जी को उसे पढ़ना-लिखना सिखाने का काम सौंप दिया।

मगनसिंह कर्तव्यशील और चतुर था। शीघ्र ही वह पढ़ने-लिखने में कुशल हो गया तथा उसने मालिक का दिल जीत लिया। बरसात के दिन थे। भट्टे में पानी भरा था, कामकाज बंद था। मगनसिंह तीन दिनों से नहीं आया था। हरिदास चिंतित हो रहे थे। कहीं से उसका हाल न मिला तो पूछते-पूछते स्वयं उसके घर पहुँचे। बाहर से आवाज दी तो मगनसिंह आया। अवरुद्ध कंठ से उसने बताया, "माँ का अंत समय है और आपसे मिलना चाहती हैं। मैं संकोचवश आपको नहीं बुला पाया।"

हरिदास ने भीतर जाकर देखा कि वृद्धा खाट पर पड़ी कराह रही है। आहट पाते ही आँखें खोलीं और अनुमान से उन्हें पहचानकर बोली, "आप आ गए, बड़ी दया की। मेरे अनाथ बालक के नाथ अब आप ही हैं। हमारे पुरखो ने कहीं धन छुपाकर रखा था। मगन के पिता ने बहुत ढूंढा पर न मिला वरना हमारी यह दशा न होती। आज तीन दिन हुए वह बीजक मुझे रद्दी कागजों में मिला। मैंने उसे मगन से छिपाकर सिरहाने संदूक में रखा है। उसी से ठिकाने का पता लगेगा। आप उसे खुदवाकर मगन को दे दीजिएगा। मेरा संसार से विश्वास उठ गया है, एक आप हैं जिस पर भरोसा है।"

हरिदास ने बीजक लिया। पता चला कि धन उस घर से 500 डग पश्चिम की ओर एक मंदिर के चबूतरे के नीचे है। धन का लोभ भला किसे नहीं छूता... नीयत बिगड़ गई। एक मन स्वयं उस धन को भोगने का करता था तो दूसरा इसे अधर्म कहता था। उहापोह की स्थिति कई दिनों तक बनी रही। अंततः विजय लोभ की ही हुई।

हरिदास शाम को सैर के लिए घर से निकलते। मंदिर के चबूतरे पर जा बैठते और सन्नाटा

छाने पर कुदाली से खोदना शुरू कर देते। चबूतरा लंबा-चौड़ा था। जल्दी खोदना भी आसान नहीं था। दिन में उनकी आत्मा उन्हें धिक्कारती पर शाम होते ही एक नशा-सा छा जाता, बुद्धि-विवेक का अपहरण हो जाता। उसे खोदते-खोदते एक महीना बीत चुका था। अमावस की रात थी। खोदते-खोदते उन्हें पत्थर की चट्टान मिली, शायद तहखाना मिल गया था। पर आज रात जब लौटे तो गिरे-गिरे से थे, सोचा शायद थकान अधिक हो गई है। रात को जोर का बुखार हुआ। तीन दिनों तक ज्वर में तपते रहे। दवा काम न कर रही थी। मगनसिंह को देखते तो बीजक देना चाहते पर साहस न जुटा पाए।

उनकी मृत्यु के पश्चात् बीजक उनके सुपुत्र प्रभुदास के हाथ लगा। बीजक हालांकि मगनसिंह के पुरखों का लिखा हुआ था पर उसने अपने नीतिपरायण और सत्यवादी पिता पर कदापि संदेह नहीं किया। उन्हीं के पदचिह्नों पर चलते हुए उसने भी शाम के समय चबूतरे पर जाना प्रारम्भ कर दिया, मानो हरिदास की आत्मा अपना अधूरा काम पूरा कर रही हो।

चट्टान तो आ ही चुकी थी। पुराना जोड़ था, फावड़ा-सरिया मारने पर भी जब चट्टानें न हिलीं तो एक रात प्रभुदास ने दरार में बारूद रखकर पलीता लगा दिया। बड़े जोर का धमाका हुआ, चट्टान उड़ गई और सामने था तो अंधकार मानो कोई पिशाच मुंह बाए हुए हो।



प्रातःकाल प्रभुदास कमजोरी से बिस्तर पर लेटे थे। माँ सिरहाने बैठी पंखा झल रही थी और उनका शरीर ज्वर की ज्वाला में जल रहा था। सामने ही लोहे के संदूक में दस हजार पुरानी मुहरें रखी थीं।

अब मगनसिंह भट्टे का मुंशी हो चुका था। प्रभुदास के घर में ही रहता था। भट्टे पर चलने के

लिए बुलाने आया तो उनका हाल देख झट डॉक्टर बुला लाया। दवा दी गई पर सब व्यर्थ... समय के साथ उनका मुख पीला पड़ने लगा। आँखें संदूक पर टिकी रहतीं। बैठी बिलख रही थी, माँ के अश्रु नहीं थमते थे। हरिदास का अंत आँखों के सामने घूम जाता था।

घर में कोहराम मचा हुआ था। किसी की कुछ समझ नहीं आता था। जवानी की मौत संसार का सबसे करुण, सबसे अस्वाभाविक और भयंकर दृशय है। विधाता की निर्दय लीला है। प्रभुदास का सारा शरीर प्राणहीन हो गया था, पर आँखें जीवित थीं और संदूक पर टिकी थीं। तभी मगनसिंह आकर पास खड़ा हुआ। प्रभुदास में मानो रक्त का संचार हुआ। इशारे से उसे अपने मुंह के निकट बुलाया, उसके कानों में कुछ कहा, और आँखें उलट गईं, प्राण निकल गए।

बेटों वाली विधवा

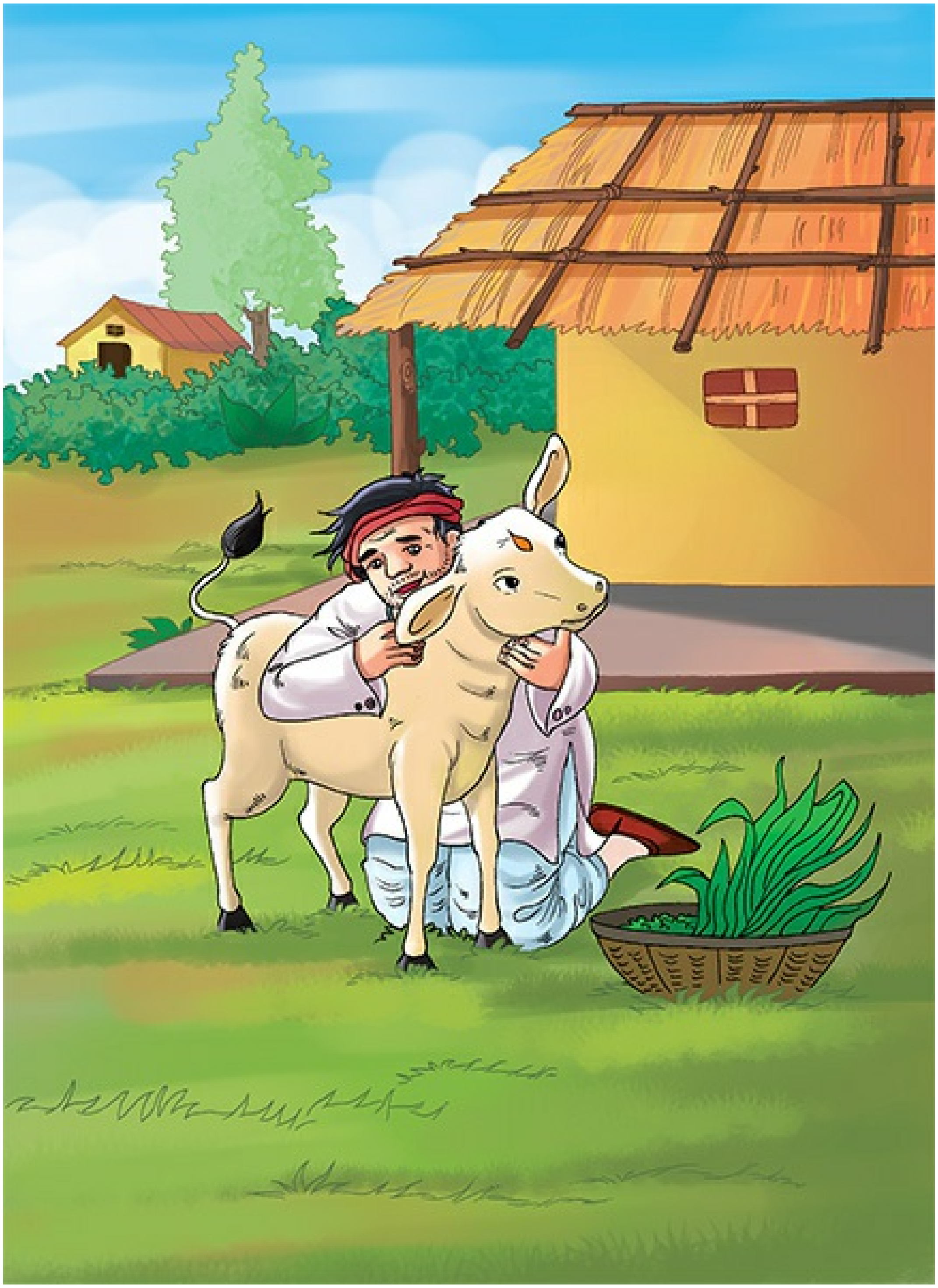
पंडित अयोध्यानाथ का निधन हो गया था। अपने पीछे वे शोकाकुल पत्नी फूलमती, बेटी कुमुद और चार बेटे कामतानाथ, उमानाथ, दयानाथ और सीतानाथ को छोड़ गए थे। तीन बहुएं थीं आज्ञाकारिणी और सुशील। सम्पत्ति के नाम पर एक पक्का मकान, दो बगीचे, कई हजार के गहने और बीस हजार नकद छोड़ा था। फूलमती जवान बेटों और बहुओं को देखकर स्वयं को ढाढस बंधा रही थी। सारा घर फूलमती के इशारों पर चलता था। बड़ा बेटा कामता किसी दफ़्तर में नौकर था, उमानाथ डॉक्टरी पास कर औषधालय खोलना चाहता था, तीसरा दयानाथ पत्रिकाओं में लिखकर कुछ कमाता था और चौथा सीतानाथ बी.ए. प्रथम श्रेणी में पास कर एम.ए. की तैयारी में लगा था। किसी में कोई दुर्व्यसन नहीं था।

आज पंडित जी को गए बारहवां दिन था। कल तेरहवीं है। ब्रह्मभोज की तैयारियां हो रही थीं। फूलमती अपनी कोठरी में बैठी सब देख रही थी। सामान आए पर फूलमती को न दिखाए गए। आटे की बोरी, घी के कनस्तर में भी कटौती कर दी गई। चालीस वर्षों की मालकिन से सब्र नहीं हो पा रहा था। जब सब्र न हो पाया तो कामता से पूछ ही बैठी- “किसकी राय से आटा कम किया गया?”

“हम लोगों की राय से।”

“तो मेरी राय कोई चीज नहीं?”

“है क्यों नहीं, लेकिन अपना हानि-लाभ हम समझते हैं।”



इस ढिठाई भरे उत्तर को सुनकर फूलमती अचंभित रह गई। अब उसकी हैसियत बारह दिन पहले सी नहीं रह गई थी। बेटा और बड़ी बहू सब संभाल रहे थे। आज जब बड़ी बहू बिना पूछे तिजोरी खोलने लगी तब फूलमती ने पास जाकर कठोर स्वर में कहा- "तिजोरी क्यों खोलती हो बहू, मैंने तो नहीं कहा..."

बड़ी बहू ने कहा "बाजार से सामान आया है तो दाम न दिया जाएगा?"

फूलमती खून का घूंट पीकर रह गई। चुपचाप आकर बैठ कर सब देखने लगी। भोज आरम्भ हो गया था। जिस आंगन में दो सौ आदमी बैठते थे वहाँ पांच सौ की पंगत बिठाई गई थी। थोड़ी देर में शोर सुनकर कोठरी से बाहर निकली। पूछने पर पता चला कि किसी के शोरबे में मरी हुई चुहिया निकल आई है। लोग पंगत छोड़कर उठ रहे हैं। फूलमती झल्लाई पर सब व्यर्थ।

पंडित जी को गए दो महीने गुजर चुके थे। कुमुद के विवाह की बात मुरारीलाल के यहाँ चल रही थी। पांच हजार दहेज का सवाल था। ऊपर से विवाह का खर्च अलग से। पंडित जी के छोड़े बीस हजार पर चारों बेटे दांत गड़ाए बैठे थे। फूलमती मुरारीलाल के यहाँ अपनी बेटी कुमुद को ब्याहना चाहती थीं पर कोई राजी न था। ऊपर से कोई कौशल रचकर सबने माता से गहने लेने का मन बनाया।

दो भाई मुंह लटकाकर भोजन करके लेटी हुई फूलमती के पास पहुँचे। उमा ने कथा गढ़ी कि दयानाथ ने एक लेख लिखा था। उस पर पांच हजार की जमानत मांगी गई है। यदि कल तक रकम जमा न की गई तो गिरफ्तार हो जाएंगे और दस वर्ष की सजा हो जाएगी। फूलमती का दिल पसीज गया और उसने अपने गहनों की पोटली इन्हें लाकर दे दी।

तीन महीने और गुजर गए। माँ के गहनों पर हाथ साफ करके चारों भाई उनकी दिलजोई करने लगे थे। माता की सलाह लेने का नाटक करते पर बाग बेचने के लिए भी बेटों ने माया रची और फूलमती उसमें फंसकर सहमत हो गई। पर कुमुद के विवाह पर मतैक्य न हो सका। रुपए के नाम पर जब फूलमती ने बीस हजार की बात उठाई तो उस पर बेटों ने अपना हक जताया और कहा कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है। माँ का हक केवल रोटी-कपड़े का होता है। आज फूलमती का मातृत्व मानो चिता में जल गया। वह भीतर से टूट गई थी।

फूलमती रात भर पड़ी रोती रही। सुबह तड़के उठकर आंगन में झाड़ू लगाने लगी। आग जलाई, दाल-चावल चुनी। सब उठे। बुढ़िया को सर्दी में सिकुड़े हुए काम करते देखा पर किसी ने कुछ नहीं कहा।

अब यह फूलमती की नियमित दिनचर्या हो गई थी। चेहरे पर गहरी वेदना झलकती थी। अंततः बिना दहेज के दीनदयाल से कुमुद का विवाह निश्चित हो गया। तिथि पक्की हुई, बारात आई, विवाह हुआ और कुमुद विदा हुई। चारों भाई प्रसन्न थे मानो हृदय का कांटा निकल गया हो। फूलमती के हृदय का हाल उसे ही पता था।

फूलमती डोली में बिठाने से पहले कुमुद को अपने कमरे में लाकर, जो कुछ सौ-पचास रुपए और दो-चार मामूली गहने उसके पास थे, उसे बेटी के आंचल में डालकर बोली- "बेटी, मेरी तो मन की मन में रह गई, नहीं तो आज क्या इस तरह तुम्हारा ब्याह होता?"

लड़कों के द्वारा दिए गए कपट का टोह उसने किसी को भी नहीं होने दिया था। सोचा कहीं कुमुद ऐसा न सोचे कि माँ ने सब गहने बहुओं के लिए रख रखे हैं पर कुमुद को इस कौशाल की टोह शायद पहले से ही थी। उसने गहने और रुपए माता के चरणों में रखकर

कहा- “अम्मा, मेरे लिए तुम्हारा आशीर्वाद ही लाखों के बराबर है। तुम इन्हें अपने पास ही रखो। पता नहीं कब कौन सी विपत्ति का सामना करना पड़े।” फूलमती कुछ कह पाती तभी उमानाथ आ गए और कुमुद को लेकर चले गए। वह विदा हो गई।

साल बीता। फूलमती अब एक छोटे से कमरे में रहती थी मानो कोई भिखारिन हो। उमानाथ का औषधालय खुला, दयानाथ का प्रेस खुला, वजीफा लेकर सीतानाथ विलायत गया, कामता के पुत्र का यज्ञोपवीत हुआ, हर बार खूब धूमधाम हुई पर फूलमती मानो चेतना शून्य हो गई थी।

सावन की झड़ी लगी हुई थी। महरी बीमार पड़ गई थी। फूलमती ने सारे काम भीग-भीगकर निपटाए और फिर कामता के लिए गंगाजल लाने उसी वर्षा में चली। गंगा बढ़ी हुई थी, मानो समुद्र हो। घाट पानी में डूब गए थे, वृक्षों की फुनगियां ही दिखती थीं। फूलमती नीचे उतरी, कलसा भरा। ऊपर आते समय पैर फिसला और लहरों में समा गई। दो-चार आदमी दौड़े पर सब व्यर्थ...।

विध्वंस

बनारस के पास किसी गांव में भुनगी नाम की एक गोंड़िन रहती थी। वह वृद्ध, विधावा एवं संतानहीन थी। उसके पास न रहने के लिए घर था और न ही उपजाने के लिए जमीन। उसका एकमात्र सहारा भाड़ था। सुबह से सुखी पत्तियां बटोरती, दोपहर तक अपना भाड़ जलाती और गांव वालों का चना-चबेना भूनकर सत्तू बनाती। बदले में जो गांव वालों से मिलता उससे गुजर-बसर करती थी। प्रायः एकादशी या पूर्णमासी के दिन आवास के कारण भाड़ नहीं जलता था। फिर भी उसे काम अधिक करना पड़ता था और भूखे पेट सोना पड़ता था।

गांव के जमींदार थे पंडित उदयमान पांडे। दयालुता उनसे कोसों दूर थी, बेगार कराना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। उन्होंने भुनगी को गांव में आश्रय दिया था तो बदले में उसे उनका काम तो करना ही पड़ेगा।

चैत का महीना था और संक्रांति का पर्व। आज के दिन नए अन्न का सत्तू खाने और दान देने की पुरानी प्रथा है। भाड़ जोरों पर था, लोगों का मेला उमड़ा हुआ था। सभी को अन्न भुनवाने की शीघ्रता थी, भुनगी को दम मारने की फुरसत न थी। तभी जमींदार साहब के दो टोकरे अनाज आ पहुँचे और तुरंत भुनने का हुक्म हुआ। उन्हें देखकर ही भुनगी सहम उठी। सूर्यास्त से पहले इतना अनाज भुनना असंभव था। वह मन ही मन उहापोह में थी कि तभी चपरासी की कड़कती आवाज आई-

चपरासी- देर न लगे नहीं तो तुम जानोगी।

भुनगी- यहीं बैठे रहो, भुन जाए तो ले जाना। किसी दूसरे का दाना छुएं तो हाथ काट देना।

चपरासी- बैठने की छुट्टी किसे है, पर तीसरे पहर तक दाना भुन जाए।

चपरासी चले गए। मन मार भुनगी दाना भुनने लगी। मन भर दाना भूनना कोई खेल तो था नहीं, बीच-बीच में भाड़ भी झोंकना पड़ता था... तीसरा पहर हो गया पर आधा काम भी न हुआ था। भय के मारे उसके हाथ कांपने लगे। जल्दी करने के चक्कर में काम और बिगड़ गया, बालू भी ठंडा हो गया था। मन में तरह-तरह के विचार आ रहे थे तभी कर्कश आवाज गूंजी-

चपरासी- क्यों री, दाने भुन गए?

भुनगी ने निडरता से कहा- भून तो रही हूँ- देख नहीं रहे...।

चपरासी- सारा दिन बीत गया और तुझसे इतना भी न भूना गया। ये तो ठंडे हैं इनका सत्तू कैसे बनेगा।

और उसी रात जमींदार के आदेश से भाड़ खोद डाला गया। भुनगी से उसकी रोटियों का सहारा छिन गया था। भाड़ टूटने से गांववालों को भी कष्ट हो गया। लोगों ने जमींदार साहब से मनुहार किया कि भुनगी को भाड़ बनाने दें पर उनके कानों पर जूं न रेंगी। वह अपना रोब भला

कैसे कम करते। भुनगी को दूसरे गांव जाना भी किसी हाल में मंजूर न था। उसने जीवन के सुख-दुःख इसी गांव में भोगे थे, यहाँ के कण-कण से उसे प्रेम था, भला वह कैसे पर-गांव जाती।

एक माह गुजर गया। पण्डित उदयमान (जमींदार साहब) अपने चपरासियों के साथ लगान वसूली पर थे। तभी उन्होंने देखा कि बुढ़िया अपने भाड़ के पुनरुद्धार में जुटी हुई है। उसके बूढ़े हाथों में गजब की शक्ति दिख रही थी। बड़े वेग से वह मिट्टी के लोंदे रख रही थी। पंडित उदयमान ने देखा तो उनके बदन में आग लग गई। गरजकर कहा- “किसके हुक्म से?”

भुनगी हकबका उठी, डरती हुई बोली, “सब कहने लगे सो बना रही हूँ।”

उदयमान- तेरी इतनी हिम्मत! मैं अभी इसे खुदवा डालूंगा... और उन्होंने जोर से भाड़ में ठोकर मारी। गीली मिट्टी सब लिए दिए नीचे बैठ गई। दूसरी ठोकर नांद पर मारी पर बुढ़िया बीच में आ गई और ठोकर उसकी कमर पर पड़ी। क्रोधित बुढ़िया फूट पड़ी- “अरे भगवान से तो डर, मुझ बेसहारा को उजाड़कर क्या पाओगे? क्या इस चार अंगुल धरती में सोना निकलेगा? दीन की हाय मत लो... मुझे दुखी मत करो...।”



उदयमान- फिर यहाँ भाड़ तो न बनाओगी?
भुनगी- न बनाऊंगी तो खाऊंगी क्या?
उदयमान- तेरे पेट का हमने ठेका नहीं लिया है।
भुनगी- टहल तुम्हारी करती हूँ तो खाने कहाँ जाऊं?

उदयमान- गांव में रहोगी तो टहल करनी पड़ेगी।

भुनगी- टहल तो तभी करूंगी जब भाड़ बनाऊंगी। रहने के नाते तो टहल नहीं कर सकती।

उदयमान- तो छोड़कर निकल जा।

भुनगी- क्यों निकल जाऊं? बारह साल खेत जोतने पर आसामी काशतकार हो जाता है। मैं तो यहीं बूढ़ी हुई अब तो यमराज ही ले जाएंगे।

उदयमान- अच्छा तो अब कानून बघारने लगी। अब तो तुझे निकालकर ही दम लूंगा... और अपने चपरासियों से पत्तियों के पहाड़ में आग लगवा दी... देखें कैसे भाड़ बनता है।

क्षण भर में हाहाकार मच गया। सूखी पत्तियां धू-धू कर जल उठीं। लोग जमा हो गए और उदासीन भुनगी भाड़ के पास खड़ी लंका दहन देखती रही। अकस्मात् वह वेग से उसी अग्नि-कुंड में कूद पड़ी। लोग दौड़े पर भीषण अग्नि के सामने किसी की हिम्मत उसे निकालने की न हुई।

उसी पल वेग से पवन चलने लगी। ऊपर को उठती लपटें भी पवन के साथ पूर्व दिशा में दौड़ने लगीं। पास ही में किसानों की कई झोपड़ियां थीं। सब की सब उन्मत्त ज्वाला की ग्रास बन गईं। लपटों ने भोज पाकर और जोर दिखाया। सामने ही उदयमान की बखार थी, उधर झपटीं। लोग आग बुझाने दौड़े, हाहाकार होने लगा। पानी के छींटों ने तेल का काम किया। ज्वालाएं और भड़कीं और उदयमान के विशाल भवन को दबोच बैठीं। देखते ही देखते अग्नि ने सब कुछ अपने दामन में समेट लिया। शेष था तो मात्र क्रन्दन-ध्वनि... जो कि भुनगी के विलाप से भी अधिक करुणाकारी थी।

सौभाग्य के कोड़े

नथुआ एक अनाथ बालक था। राय भोलानाथ अति धार्मिक एवं दयाशील पुरुष थे। उन्होंने अनाथ नथुआ को ईसाई बनने से बचाकर अपने घर में आश्रय दे दिया था। भोजन, उतरे कपड़े, कभी-कभार एकाध् पैसा भी उसे मिल जाता था। उसका काम बंगले में झाड़ू लगाना मात्र था।

रायसाहब की एकमात्र पुत्री थी रत्ना। सम्पन्न होते हुए भी सहृदय एवं सुशील बालिका थी। एक दिन जब रत्ना दूसरे कमरे में मेमसाहब से अंग्रेजी पढ़ रही थी तभी नथुआ उसके सोने के कमरे में झाड़ू लगा रहा था। नरम मोटा गद्दा, उजली चादर और सुंदर दुशाला देखकर उसका मन बिस्तर पैर सोकर देखने की इच्छा जागी। वह पलंग पर चढ़कर नर्म बिस्तर पर लेट गया और दुशाला ओढ़ लिया। उसे लगा मानो वह रूई में धंसा जा रहा हो। काश! वह राय साहब का बेटा होता...। उसी क्षण किसी कार्यवश राय साहब ने कमरे में प्रवेश किया और नथुआ को पलंग पर लेटे देख लिया।

अत्यंत क्रोधित होकर चिल्लाए- तू यह क्या कर रहा है? तेरी इतनी हिम्मत... और फिर उन्होंने नथुआ की धुआंधार पिटाई की। शोर सुनकर रत्ना भागी-भागी आई और बीच-बचाव करने लगी, दादा जी से क्षमा की मनुहार करने लगी। नथुआ रत्ना के पीछे दुबक गया। अंत में दादा जी ने अपना फैसला सुनाया- यदि अपना भला चाहता है तो इसी पल यहाँ से निकल जाए।

नथुआ सिर पर पैर रखकर भागा। वापस उसने मुड़कर भी न देखा। वह एक गली में पहुँचा। शाम को एक वृक्ष तले वहाँ के लोग सभी बैठे गायन का अभ्यास कर रहे थे। नथुआ एक किनारे खड़ा होकर उन्हें सुनने लगा। एक आदमी ने उसे पास बुलाया और कुछ गाने को कहा। राह चलते दिल बहलाने को कुछ गुनगुना लिया करता था सो वही उसने सुनाया। वह आदमी 'घूरा'गायन का उस्ताद था। तुरंत उसने परख लिया और नथुआ की रामकथा सुनकर उसे गले लगा लिया।

अब उस्ताद ने नथुआ को अपने साथ रखना शुरू किया। तीन वर्षों के बाद साथ में नथुआ गाना, शहनाई, पखावज, सारंगी, तम्बूरा, सितार- सभी कलाओं में दक्ष हो चुका था। पूरे शहर में नथुआ की धूम मच गई थी। नथुआ अब नाथूराम बन चुका था।

ग्वालियर में एक संगीत सम्मेलन हुआ जिसमें देश-देशांतरों से संगीताचार्य आमंत्रित थे। उस्ताद घूरे भी निमंत्रित थे। वे अपने साथ नाथूराम को भी ले गए। नाथू ने वहाँ भी धूम मचाई और सोने का तमगा हासिल किया। ग्वालियर के संगीत विद्यालय के अध्यक्ष ने उसकी प्रतिभा देखकर, उस्ताद घूरे से आग्रह कर नाथूराम को संगीत विद्यालय में दाखिल करवा दिया।

नाथूराम ने पाँच वर्षों के अथक परिश्रम से न केवल विद्यालय की सर्वोच्च उपाधि ग्रहण की वरन् भाषा, गणित एवं विज्ञान में भी अपनी प्रखरता का परिचय दिया। उनका रहन-सहन,

तौर-तरीका अब शिक्षित समुदाय का हो चुका था। जर्मनी के सबसे बड़े संगीत विद्यालय में उन्होंने दाखिला लिया ओर पांच वर्षों के कड़े परिश्रम के बाद 'आचार्य' की पदवी लेकर भारत लौट आए। लखनऊ से बचपन का नाता था अतः वहीं रहने का निश्चय किया।

10 वर्ष का बालक आज 23 वर्ष का शिक्षितभद्र युवक हो चुका था। शायद उनकी माँ भी अब अपने नथुआ को न पहचान पाती।

शोर सुनकर उनका ध्यान भंग हुआ। जिस नामी कंपनी में उनकी नौकरी लगी थी उसी के लोग फूल माला लेकर आदर में खड़े थे। एक युवती भी थी जो रत्ना से बहुत मिलती थी।

आचार्य जी के रहने की व्यवस्था जहाँ थी वहाँ पहुँचे। यह बंगला तो वही था जहाँ बचपन में रत्ना के साथ खेलते थे, सारे सामान भी वही थे जस के तस। पूछा- किसका बंगला है?



मैनेजर ने बताया- एक राय भोलानाथ हैं उन्हीं का है।

आचार्य- रायसाहब कहाँ गए?

मैनेजर- खुदा जाने कहाँ चले गए। कर्ज के कारण यह बंगला नीलाम हो रहा था। मेरे थिएटर के करीब था सो मैंने इसे 40 हजार में ससामान खरीद लिया।

बातों-बातों में पता चला कि उस्ताद घूरे की किसी सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। आचार्य महाशय उसी घर में रह रहे थे पर ठीक उसी तरह जैसे कोई नई बहू अपने ससुराल में रहती है। धीरे-धीरे आचार्य जी की प्रतिभा ने अपना रंग पूरे शहर पर दिखाना शुरू कर दिया था। चारों ओर वाह! वाह! हो रही थी। रत्ना और आचार्य परस्पर आकृष्ट और प्रेम विह्वल हो रहे थे।

रायसाहब का बंगले पर आना-जाना लगा रहता था। अपने पुराने घर में थोड़ी देर आकर बैठ जाया करते थे- जी बहल जाता था। धीरे-धीरे बातचीत में जब उन्होंने यह जान लिया कि आचार्य जी अविवाहित है। तो एक दिन उन्होंने अपनी बेटी रत्ना से विवाह का प्रस्ताव रख दिया। आचार्य ने टाल-मटोल दिखाई। उन्हें भेद खुलने का भय था। वह यह जानते थे कि बचपन का सत्य जानने के बाद वह मात्र नफरत के पात्र रह जाएंगे।

रायसाहब ने तो रत्ना का विवाह आचार्य जी से करने का मानो पूरा मन बना लिया था। उन्हें आचार्य जी से अच्छा वर पुत्री के लिए नहीं मिलता। एक दिन कह ही बैठे कि वह विवाह की तिथि निकलवा लेते हैं। और अंततः दोनों का विवाह हो ही गया।

विवाह हुए महीना भर हो गया था। एक रात भोजन के पश्चात् आचार्य जी उसी पलंग पर लेटे थे जिसने उनके भाग्यचक्र को परिवर्तित कर दिया था। वह अपनी असलियत रत्ना को बतलाना चाहते थे। शायद मन में अनजाना भय भी था कि कहीं रत्ना उनसे नफरत न करने लगे। पर आज कहने का मन बना ही लिया। तभी रत्ना कमरे में मुस्कराती हुई आई-

आचार्य ने मुस्कराते हुए कहा- चिराग गुल कर दूं न?

रत्ना- क्यों, क्या मुझसे शर्म आती है?

आचार्य- शायद हाँ, क्योंकि मैंने तुम्हें धोखा दिया है।

रत्ना- तुम और धोखा? तुम में धोखा देने की शक्ति ही नहीं है।

आचार्य- तुम कुछ नहीं जानतीं...

रत्ना- सब जानती हूँ।

आचार्य- जानती हो, मैं कौन हूँ?

रत्ना- खूब जानती हूँ। तब से जानती हूँ जब तुम बगीचे में खेला करते थे। मैं तुम्हें मारती थी, तुम रोते थे, मैं जूठी मिठाइयां देती थी, तुम दौड़कर लेते थे, तब भी मुझे तुमसे प्रेम था पर हाँ व्यक्त दूसरे रूप में होता था।

आचार्य- रत्ना, यह जानकर भी तुमने...

रत्ना- हाँ, न जानती तो शायद न करती।

आचार्य- रायसाहब भी जानते हैं?

रत्ना- नहीं, उन्हें नहीं मालूम। भूलकर भी न कहना, वह आत्मघात कर लेंगे।

आचार्य- वह कोड़े अभी तक याद हैं।

रत्ना- अब पिता जी के पास उसका प्रायश्चित करने के लिए कुछ भी शेष नहीं है। उस कोड़े

ने हमें सब कुछ दे दिया है। अब तुम उन्हें क्षमा कर दो।

सच्चाई का उपहार

मुंशी भवानीसहाय बरांव के मदरसे में प्रथम अध्यापक थे। उन्हें बागवानी का कुछ अधिक ही शौक था। क्यारियों में विभिन्न प्रकार के फूल लगा रखे थे। तरह-तरह की लताएं थीं जिनसे मदरसे की शोभा कई गुणा बढ़ गई थी। मिडिल कक्षा के विद्यार्थियों का सहयोग वह साफ-सफाई, गुड़ाई, सिंचाई के लिए लिया करते थे। बच्चों की शिक्षा का यह उत्तम तरीका था। उन्हीं विद्यार्थियों में चार-पाँच विद्यार्थी जमींदारों के थे। बागवानी का मनोरंजक कार्य भी उन्हें बेगार प्रतीत होता था। अमीरी के झूठे अभिमान के कारण हाथ से काम करना उनके लिए निंदनीय था। जब उनके काम करने की बारी आती तो कोई न कोई बहाना तैयार रहता था। दूसरे, विद्यार्थियों को भी बहकाया करते थे। कहते, 'पढ़ें फारसी बेचें तेल'। यदि खुरपी-कुदाल ही करना था तो मदरसा आने की क्या आवश्यकता? पढ़ने आते हैं मजदूरी करने नहीं। मुंशी जी के द्वारा दिया गया दण्ड उनका द्वेष और बढ़ा देता था। अंततः एक दिन उन सब ने सलाह करके पुष्पवाटिका के विध्वंस का निश्चय किया।



दस बजे मदरसा लगता था। आठ बजे प्रातः ही सबों ने पहुँचकर चुपचाप पुष्पवाटिका उजाड़नी शुरू कर दी। पौधे उखाड़ डाले, पानी की नालियां तोड़ डालीं, मेड़ें खोद डालीं और देखते ही देखते दस मिनट में ही हरा-भरा बाग नष्ट हो गया। धड़कते दिलों से लड़के शीघ्रता से बाहर निकले लेकिन दरवाजे पर उन्हें अपना सहपाठी बाजबहादुर दिखाई दिया। शरीर से

दुबला-पतला स्वभाव से शांत एवं गंभीर पर चतुर लड़का था। ऊधम पार्टी के लड़के उससे ईर्ष्या करते थे। उसे देखते ही उनका रक्त सूख गया। उसने देखा है तो मुंशी जी से अवश्य शिकायत करेगा। बुरे फंसे, आज कुशल नहीं है। यह राक्षस इस समय कैसे आ गया? आपस में इशारा हुआ कि इसे मिला लेना चाहिए। ऊधम पार्टी के मुखिया जगतसिंह ने आगे बढ़कर उससे पूछा, "आज इतने सवेरे कैसे आ गए? हमने तो तुम्हारे गले की फांसी छुड़ा दी। कितना दिक करते थे, यह करो-वह करो। मगर यार, मुंशी जी से जड़मत देना अन्यथा लेने के देने पड़ जाएंगे।"

जयराम ने कहा- "क्या कह देंगे? यह अपना ही तो है। हमने जो किया है सबके भले के लिए किया है। चलो यार, तुम्हें बाजार की सैर करा दें, मुंह मीठा करा दें।"

बाजबहादुर- "नहीं, आज घर पर पाठ याद करने का अवकाश नहीं मिला, यहीं बैठकर पढ़ूंगा।"

जगतसिंह- "अच्छा, मुंशी जी से तो न कहोगे?"

बाजबहादुर- "मैं स्वयं कुछ न कहूंगा पर उन्होंने मुझसे पूछा तो?"

जगतसिंह- "कह देना, मुझे नहीं मालूम।"

बाजबहादुर- "मुझसे यह झूठ न बोला जाएगा।"

जयराम- "अगर तुमने चुगली खाई और हमें मार पड़ी तो हम तुम्हें पीटे बिना न छोड़ेंगे।"

बाजबहादुर- "हमने कह दिया कि चुगली न खाएंगे पर पूछने पर झूठ भी न बोलेंगे।"

जयराम- "तो हम तुम्हारी हड्डियां भी तोड़ देंगे।"

बाजबहादुर- "इसका तुम्हें अधिकार है।"

दस बजे। मदरसा लगा। मुंशी भवानीप्रसाद ने बाग की जो दुर्दशा देखी तो आग बबूला हो गए। बाग उजड़ने से अधिक लड़कों की शरारत का दुःख था। किसी जानवर ने यह विनाश लीला की होती तो हाथ मलकर रह जाते पर मानव द्धारा किया गया अत्याचार असहनीय था। कक्षा में गरजकर पूछा- "यह बाग किसने उजाड़ा है?"

कमरे में सन्नाटा छा गया। मिडिल कक्षा के 25 विद्यार्थियों में कोई भी ऐसा न था जो इस घटना को न जानता हो किन्तु कहने का साहस किसी में भी न था। सब सिर झुकाए मौन बैठे थे। अपराधियों के चेहरे पर हवाइयां थीं।

मुंशी जी के क्रोध् ने उग्र रूप लिया। चिल्लाकर बोले- "मुझे पता है यह तुम में से ही किसी की शरारत है। बता दो अन्यथा एक ओर से पीटना शुरू करूंगा, फिर न कहना निरपराध् मारे गए।" वही सन्नाटा!

मुंशी जी, "देवीप्रसाद तुम जानते हो?"

देवी- "जी नहीं, मुझे कुछ नहीं मालूम।"

"शिवदत्त, तुम जानते हो?"

"नहीं नहीं, मुझे कुछ नहीं पता।"

“बाजबहादुर, तुम कभी झूठ नहीं बोलते, तुम्हें मालूम है?”

बाजबहादुर खड़ा हो गया। नेत्रों में साहस और मुखमंडल वीरत्व से प्रकाशित। बोला- “जी हाँ!”

ऊधम पार्टी ने रक्तवर्ण आँखों से बाज को देखा और मन में कहा- अच्छा!

यों तो भवानी सहाय बड़े ही धैर्यवान मनुष्य थे। बेमतलब लड़कों को यातना नहीं देते थे पर दुष्टता का दंड देने में दया भी नहीं दिखाते थे। छड़ी मंगाकर पांचों लड़कों को दस-दस छड़ियां लगाईं और सारे दिन बेंच पर खड़ा रखा। बुरे चाल-चलन के लिए रजिस्टर में काले चिह्न भी लगा दिए।

दंड भोगने के बाद ऊधम पार्टी बाजबहादुर की सच्चाई के कारण उसके खून के प्यासे हो गऐ। अधिकांश लड़के अपराधियों के मित्र बन गए। षड्यंत्रा रच जाने लगा कि बाजबहादुर की खबर ली जाए। घर के भेदी को ऐसा मारो कि मदरसे में मुंह न दिखाए। दगाबाज़! सच्चाई की दुम! आज बच्चू को पता चलेगा।

बाजबहादुर इन सबसे अनजान, छुट्टी होने पर घर की तरफ चला। रास्ते में अमरुद के बाग में जगतसिंह और जयराम अन्य साथियों के साथ खड़े थे। बाजबहादुर ताड़ गया। कोई उपाय न था, आगे बढ़ा। जगतसिंह बोला- “आओ लाला, सच्चाई का इनाम लेते जाओ।”

बाजबहादुर- “रास्ते से हट जाओ, मुझे जाने दो।”

जयराम- “जरा सच्चाई का मजा तो लेते जाओ।”

बाजबहादुर- “मैंने पहले ही कह दिया था कि यदि नाम लेकर पूछेंगे तो झूठ नहीं बोलूंगा।”

जयराम- “हमने भी कह दिया था कि तुम्हें इनाम दिए बिना न छोड़ेंगे”- और वह घूसा तानकर बाजबहादुर की ओर बढ़ा। जगतसिंह ने बाज के हाथ पकड़ने चाहे। जयराम का छोटा भाई शिवराम अमरुद की एक टहनी लेकर झपटा। चारों ओर शेष लड़के खड़े तमाशा देख रहे थे मानो रिजर्व सेना हो। बाजबहादुर ने झपटकर शिवराम से टहनी ले ली और तानते हुए बोला- “तुम सच्चाई का इनाम देने वाले कौन हो?”

दांव पेंच होने लगे। बाजबहादुर दुर्बल होते हुए भी अत्यंत चपल और सतर्क था। सत्य का विश्वास लिए हुए वह डटा रहा। ठोकरों, घूसों का जवाब देता रहा पर अकेला कब तक टिकता... जयराम का एक जोरदार घूसा पसली पर पड़ा और वह बेदम होकर गिर पड़ा। आँखें पथरा गईं, मूर्च्छा आ गई। उसकी यह दशा देखकर शत्रुओं के हाथों के तोते उड़ गए। घबराकर बेतहाशा भागे।

कोई दस मिनट बाद बाजबहादुर सचेत हुआ। कलेजे की चोट के कारण खड़ा भी नहीं हो पा रहा था पर किसी तरह उठा और लंगड़ाता हुआ घर की ओर चला।

उधर विजयी दल जान बचाकर भागा। सभी तितर-बितर हो गए थे। जिसे जिधर समझ आया भाग लिया। केवल तीन जयराम के घर पहुँचे।

जयराम- “कहीं मर न गया हो, मेरा घूसा खूब बैठा था।”

जगतसिंह- “तुम्हें पसली में नहीं मारना चाहिए था। तिल्ली फट गई होगी तो नहीं बचेगा।”

जयराम- “यार, मैंने जानकर थोड़े ही मारा था। अब क्या किया जाए?”

जगतसिंह- “करना क्या है, चुपचाप बैठे रहो।”

जयराम- “कहीं मैं अकेला तो न फसूंगा?”

जगतसिंह- “अकेले कौन फंसेगा, सब के सब साथ चलेंगे।”

जयराम- “अगर बाजबहादुर मरा नहीं है तो उठकर सीधे मुंशी जी के पास जाएगा।”

जगतसिंह- “मुंशी जी कल हम लोगों की खाल अवश्य उधेड़ेंगे।”

जयराम- “इसलिए मेरी सलाह है कल से मदरसे जाओ ही नहीं। कोई बहाना करके बैठे रहें। महीने-दो महीने में मामला ठंडा पड़ जाएगा, तो देखा जाएगा।”

शिवराम- “और जो परीक्षा होने वाली है?”

जयराम- “ओ हो! इसका तो ख्याल ही नहीं था। मात्र एक महीना है।”

जगतसिंह- “तुम्हें अबकी बार जरूर वजीफा मिलता।”

जयराम- “हाँ, मैंने बहुत परिश्रम किया था। तो फिर?”

जगतसिंह- “कुछ नहीं, तरक्की तो हो ही जाएगी। वजीफे से हाथ धोना पड़ेगा। बाजबहादुर के हाथ लग जाएगा।”

दूसरे दिन मदरसा लगा। जगतसिंह, जयराम और शिवराम तीनों गायब थे। वली मुहम्मद के पैर में पट्टी बंधी थी। भय से बुरा हाल था। कल के दर्शकगण थरथरा रहे थे कि पोल न खुल जाए और गेहूं के साथ घुन की तरह हम न पिस जाएं। बाजबहादुर अपने काम में प्रतिदिन की भांति लगा हुआ था मानो कुछ हुआ ही नहीं हो। वह अपने स्वभाव के प्रतिकूल कुछ प्रसन्नचित्त दिख रहा था। वह चाहता था कि लोग उसकी ओर से निश्चिंत हो जाएं। उसका यह व्यवहार शत्रुओं को लज्जित करने के लिए काफी था।

तीनों अपराधी दूसरे, तीसरे दिन भी मदरसा न आए। घर से निकलते पर देहात की ओर जाकर किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाते या फिर गुल्ली-डंडा खेलते और शाम को घर आ जाते। उन्हें यह विश्वास ही नहीं होता था कि मदरसा स्वाभाविक रूप से चल रहा है और मुंशी जी किसी को कुछ नहीं कहते हैं। बाजबहादुर शांत रहने वाला नहीं है। उन्हें मदरसा जाने का साहस ही नहीं हो रहा था।

चौथे दिन तीनों बैठे विचार ही कर रहे थे कि क्या किया जाए तभी उन्हें बाजबहादुर अपनी ओर आता हुआ दिखाई दिया। वे कुछ समझ पाते उससे पहले ही बाजबहादुर ने पास पहुँचकर कहा- “तुम लोग मदरसा क्यों नहीं आ रहे?”

जगतसिंह- “मदरसा क्या जाएं? जान पर पड़ी है। मुंशी जी एक भी हड्डी न छोड़ेंगे।”

बाजबहादुर- “क्यों वली मुहम्मद, दुर्गा सभी तो आते हैं। मुंशी जी ने किसी से कुछ कहा क्या?”

जयराम- “तुमने उन्हें छोड़ दिया होगा पर हमें क्यों छोड़ने लगे। नमक-मिर्च लगाकर कहा

होगा।”

बाजबहादुर- “आज मदरसा चलकर इसकी परीक्षा कर लो।”

जगतसिंह- “तो यह झांसा, पिटवाने की चाल है।”

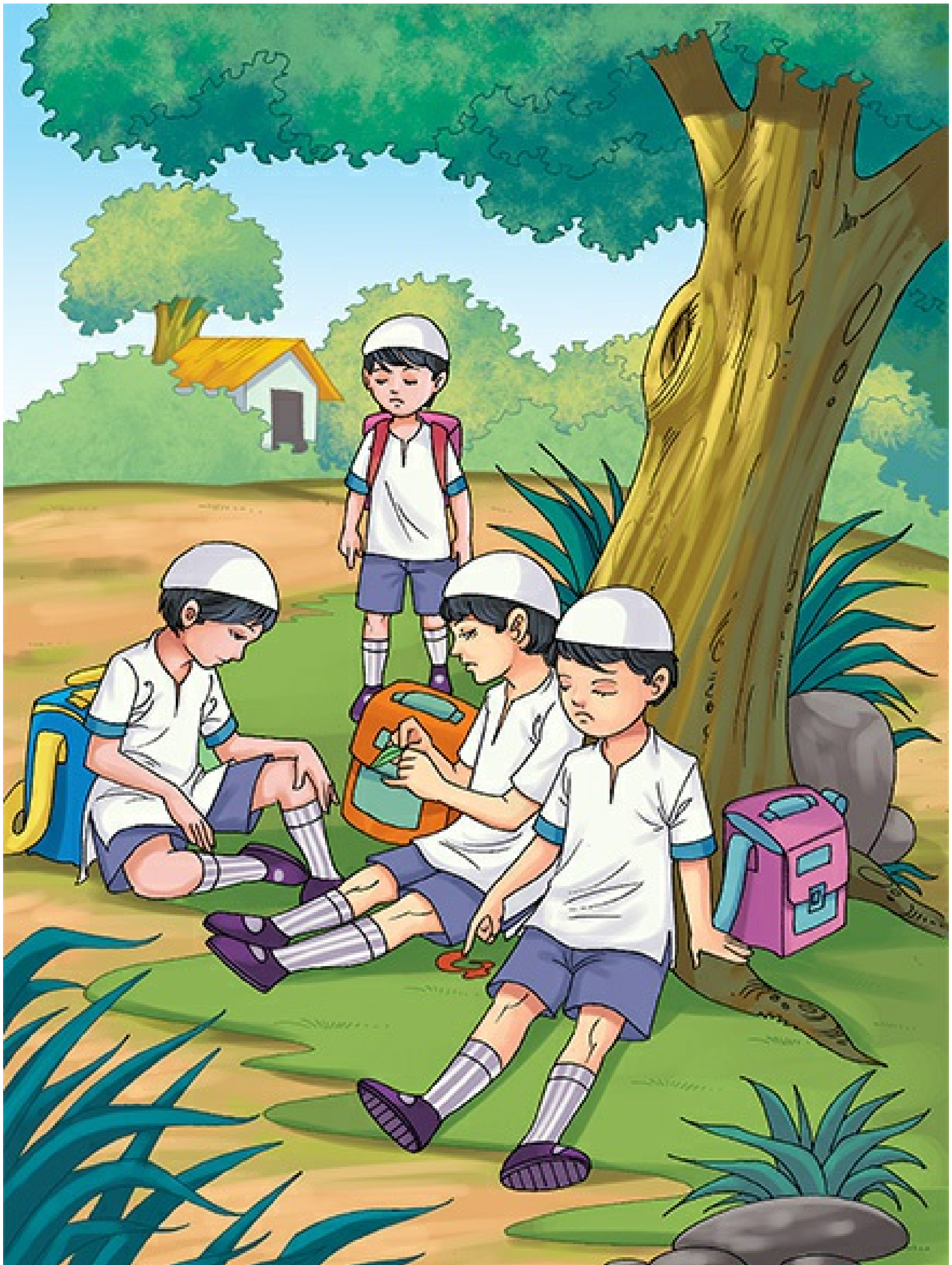
बाजबहादुर- “मैं कहीं भागा तो नहीं जाता। उस दिन सच्चाई की सजा दी थी, आज झूठ का इनाम देना।”

जयराम- “सच कहते हो, तुमने शिकायत नहीं की?”

बाजबहादुर- “शिकायत की कौन-सी बात थी? तुमने मुझे मारा, मैंने तुम्हें मारा। तुम्हारा घूसा भारी पड़ा। आपस के झगड़ों की शिकायत करना मेरी आदत नहीं।”

यह कहकर बाजबहादुर चला गया। तीनों उसकी बातों पर काफी देर तक मंथन करते रहे और अंत में निश्चय हुआ कि आज चलना चाहिए।

नियत समय पर मदरसा पहुँचे। मुंशी जी आए। लड़कों ने खड़े होकर स्वागत किया। इन पर उन्होंने तीव्र दृष्टि डाली और कहा- "तीन दिनों से गैर हाजिर हो, दरजे में जो इम्तहानी सवाल हुए हैं, उन्हें नकल कर लो” और फिर पढ़ाने में मग्न हो गए।



छुट्टी होने पर सभी लड़के मिलकर बाजबहादुर के पास पहुँचे। जगतसिंह ने आगे बढ़कर कहा- “हमारा अपराध् क्षमा कर दो। हम लोग उजड्ड, गंवार और मूर्ख हैं, अब हमें क्षमा कर दो।”

बाजबहादुर ने नम आँखों से कहा- “मैं तुम लोगों को अपना भाई समझता हूँ और भाइयों में

झगड़े होते ही रहते हैं। इसमें क्षमा की कहाॅ गुंजाइश है?"

सबके सब बाजबहादुर से गले मिले। मन निर्मल हो गया था। सारा मदरसा बाजबहादुर की पूजा करने लगा। बाज मदरसे का मुखिया और नेता बन गया था।

पहले उसे सच्चाई का दण्ड मिला था और अब उसने सच्चाई का उपहार पाया था।

कौशल

पंडित बलराम शास्त्री जी सीधे-सादे आचार्य थे। किसी पाठशाला में अध्यापन का कार्य करते थे। जितना मिलता था वह गुजारे के लिए पूरा पड़ जाता था। पंडिताई के बाकी कार्य जैसे- दुर्गा पाठ, भागवत् कथा, जन्म कुंडलियां, वर्ष-फल आदि काम उनके लिए निंदनीय थे तथा वे दबे-ढके शब्दों में इनकी बुराई भी करते रहते थे।

शास्त्री जी की धर्मपत्नी थीं माया। बहुत दिनों से उनकी एक हार की लालसा थी। सैकड़ो बार वह पंडित जी से हार के लिए आग्रह कर चुकी थीं। पंडित जी हार के पक्ष में नहीं थे इसलिए भांति-भांति के तर्क दिया करते थे- यह बेकार का लोभ है; सोने में मिलावट होती है; सोनार पर क्या भरोसा; गहना रखना मानो चोरों को आमन्त्रित करना है और सबसे बड़ी बात सुंदरता तो मन में होती है, वाणी में होती है... हार में भला क्या रखा है; आदि-आदि। उनके तर्क माया का मुंह तो बंद करवा देते पर पड़ोसिनो को देख-देख उनका मन हमेशा ललचाता रहता था।

एक दिन जब पंडित जी पाठशाला से आए तो उन्होंने माया के गले में एक सुंदर हार देखा। पूछने पर माया ने बताया कि पड़ोसिन का हार है और वह पंडित जी को दिखाने के लिए पहन आई हैं। माया (उनकी पत्नी) ने वैसा ही 20 तोले का हार बनवाने की ज़िद़ करी। पंडित जी ने तरह-तरह के तर्कों से उन्हें समझाया और हार वापस करने की सलाह दी।

आधी रात का वक्त था। सभी निद्रा देवी की गोद में समाए थे। तभी एकाएक माया चिल्लाई- “चोर-चोर, मुझे घसीट रहा है, अरे बचाओ, बचाओ...।”

पंडित जी हकबका कर उठे और बोले- कहाँ, कहाँ? पकड़ो-पकड़ो, लालटेन लाओ...

माया ने कांपते हुए कहा- मैंने उसकी परछाईं देखी है, मेरी कोठरी में गया है, डर के मारे उठा नहीं जा रहा।

शोर सुनकर पड़ोसी भी आ गए। तभी माया जोर-जोर से रोती हुई बोली- हाय! मेरे हार ले गया... अब मैं क्या करूंगी...?

सुबह हो गई थी। सबने मिलकर ढूंढा पर चोर न मिला। हार गायब था पर बाकी सारी चीजें सलामत थीं। माया पछाड़ खा रही थी और पंडित जी उसे कोस रहे थे। माया को दुःख इस बात का था कि घर की बाकी सारी चीजें चली जातीं पर पराया हार न जाता... अंत में पंडित जी ने उसे ढाढस बंधाया कि जो होना था सो हो गया। पड़ोसिन से कह देना कि तुम्हारी चीज हम अवश्य लौटा देंगे अन्यथा हमें चैन न आएगा।

अब शास्त्री जी को दिन रात बस हार बनवाने की चिंता लगी रहती थी। हार के लिए कम से कम छः सौ रुपए की आवश्यकता थी। रात की नींद छूट गयी। पाठशाला से आने के बाद जन्मपत्री देखना, कुंडली मिलाना, भागवत कथा कहना, जो भी कार्य उनकी नजरों में निकृष्ट था उसे अपने सर चढ़े कर्ज को उतारने के लिए करने लगे। शरीर दिन प्रतिदिन कमजोर होने

लगा। यहाँ तक कि पत्नी माया को भी उनकी चिंता सताने लगी।



पांच माह गुजर चुके थे। एक दिन संध्या समय पंडित जी ने आकर एक पुड़िया माया के सामने रखी और कहा- "लो, आज मैं तुम्हारे ऋण से उऋण हुआ।"

माया ने पुड़िया खोली। हार की सुंदरता देखकर उसके मुख पर आनन्द की आभा दौड़ गई, बोली- “खुश होकर दे रहे हो या नाराज होकर?”

पण्डित- मतलब? ऋण तो चुकाना ही है, खुशी हो या नाखुशी।

माया- यह ऋण नहीं है। यह तुम्हारी निशानी...

पंडित- तो क्या ऋण के लिए मुझे दूसरा हार बनवाना पड़ेगा?

माया- नहीं-नहीं, हार चोरी नहीं हुआ था, मैंने झूठ-मूठ शोर किया था।

पंडित- क्या.........?

माया- हाँ, सच कहती हूँ, मुझे क्षमा करना...।

पंडित- तो मुझसे तुमने मजाक किया था?

माया- हाँ, ऐसा ही समझ लो...।

पंडित- तुम्हें पता है मुझे यह कितना भारी पड़ा है, तुम्हारे मज़ाक का क्या मूल्य देना पड़ा है? मुझे मेरे आदर्शों तथा अपने आत्म स्वातंत्रय को बलिदान करना पड़ा है...।

ईदगाह

गांव में चारों ओर चहल-पहल और हलचल थी। सभी के चेहरे खिले हुए थे। बच्चे बूढ़े सभी प्रसन्न थे क्योंकि तीस दिनों के रोज़े के बाद आज ईद आई थी। ईद खुशियों का त्योहार, सेवइयों का त्योहार, नये कपड़ों का त्योहार और इबादत का त्योहार... सभी नए कपड़े पहनकर ईदगाह जाने की तैयारी कर रहे थे, जहाँ रोजेदारों की पंक्तियां एक के पीछे एक खड़ी होती हैं और एकसाथ सभी के सिर सजदे में झुकते हैं। अमीर-गरीब का कोई भेदभाव नहीं रहता है। ऐसा लगता है मानों भाईचारे का धागा सभी आत्माओं को एक लड़ी में पिरोए हुए है।

इस खुशी के अवसर पर भी एक बूढी औरत उदास, दुखी बैठी आँसू बहा रही थीं उसे उसका बेटा आबिद और बहू याद आ रहे थे जो गत वर्ष हैजे की भेंट हो गए थे। उनका पाँच वर्षीय बेटा हामिद ही अब उसका सब कुछ था। हामिद के लिए उसकी बूढ़ी दादी अमीना ही उसकी माँ और पिता थी।

गरीबी की मार भी कुछ कम न थी। बड़ी कठिनाई से उसने कुछ कपड़े सिलकर आठ आने जमा किए थे। इसी आठ आने में उसे ईद की सारी तैयारी करनी थी। हामिद के लिए थोड़ा दूध् लाती थी। ग्वालिन ने पैसे मांगे तो उसे दे दिए। अब उसके पास मात्र दो आने बचे थे। दूध्, सेवईं, चीनी सभी तो लाना था... वह अपनी सोच में गुम थी कि तभी हामिद उसके गले में झूलकर बोला-

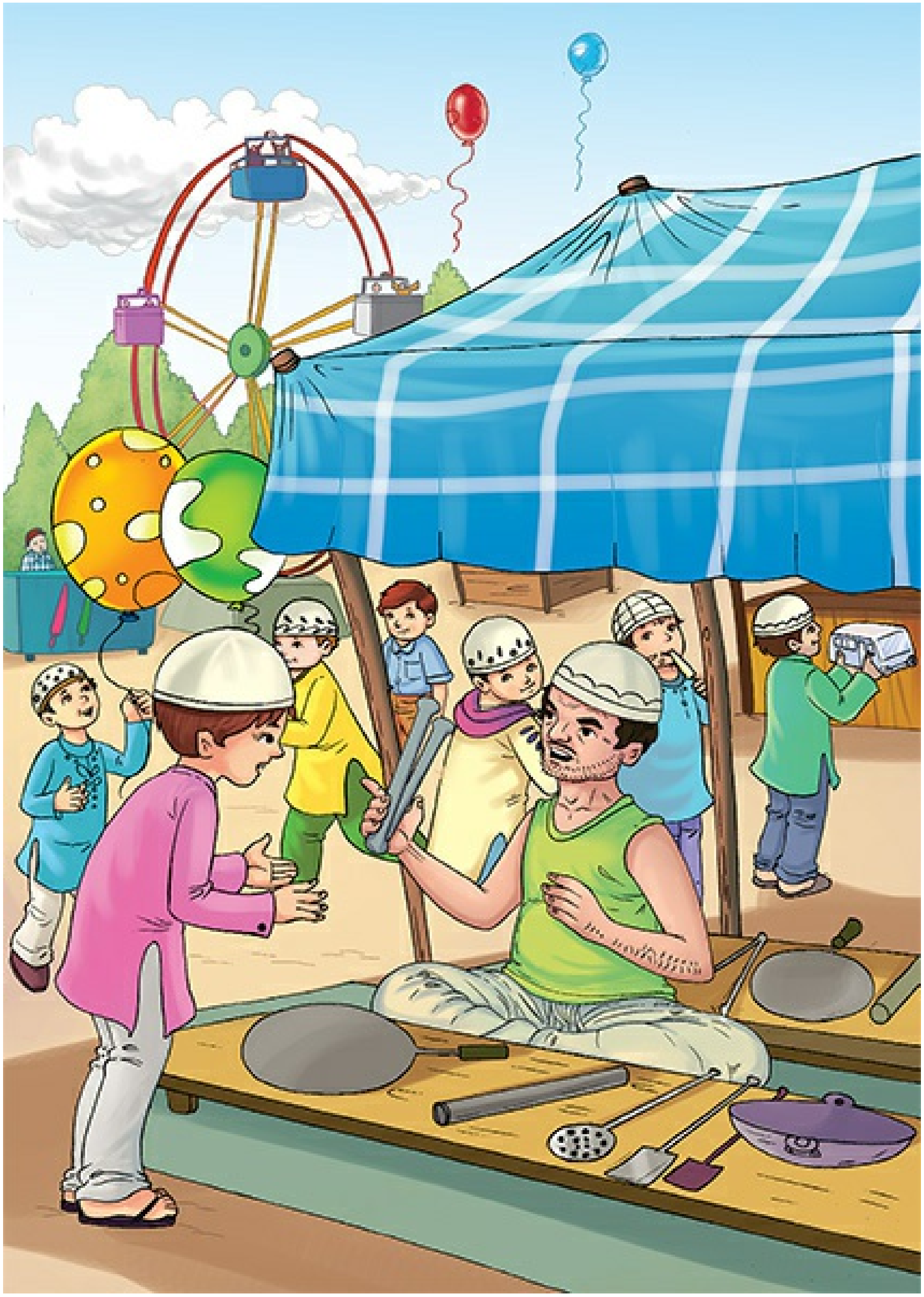
“तुम डरना नहीं अम्मी, मैं सबसे पहले आऊँगा।”

अमीना ने उसे प्यार से गले लगाया और तीन पैसा उसकी मुट्ठी में देकर ईदगाह जाने की इज़ाज़त दे दी।

हामिद के पैरों में मानो पर लग गए। वह उछलता-कूदता गांव वालों के साथ चल दिया। महमूद, मोहसिन, नूरे और सम्मी के साथ उछलता-कूदता हामिद ईदगाह पहुँचा। नमाज अदा करने के बाद सब एक दूसरे के गले मिले। फिर मिठाई और खिलौनों की दुकानों पर धावा बोला गया। तरह-तरह के मनभावन खिलौने बच्चों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। महमूद ने खाकी वर्दी वाला सिपाही खरीदा तो मोहसिन ने भिश्ती। नूरे ने काले चोगे वाला वकील खरीदा। तो सम्मी ने धोबिन। हामिद बस ललचाती आँखों से देखता रहा।

खिलौने के बाद मिठाइयों की बारी आई। किसी ने रेवड़ी ली, किसी ने गुलाब जामुन तो किसी ने सोहन हलवा। बच्चे हामिद को ललचा कर खाते रहे और हामिद संतोष का प्याला था लोहे की चीजों की दुकान की ओर बढ़ गया। एक दुकान पर उसे चिमटे रखे दिखे। अचानक उसे ख्याल आया कि दादी के पास चिमटा नहीं है और रोटियाँ बनाते हुए उसके हाथ कई बार जल जाते हैं। मन ही मन उसने विचारा कि दादी चिमटा पाकर कितनी प्रसन्न होगी। अब तो उसकी कल्पना को पर लग गए। उसे बस दादी की खुशी दिखाई देने लगी। उसने

दुकानदार से पूछा, “यह चिमटा कितने का है?”



दुकानदार ने छोटे बच्चे को देखकर कोई भाव न दिया और बोला, “तुम्हारे काम का नहीं है।”

"बिकाऊ है या नहीं?"

"बिकाऊ नहीं है तो यहाँ लादकर क्यों लाए हो?"

"तो दाम क्यों नहीं बताते? कै पैसे का है?"

"छः पैसे लगेंगे।"

यह सुनते ही हामिद का दिल बैठ गया। बंद मुट्ठी में तो कुल तीन पैसे हैं... तभी दुकानदार ने कहा, "पांच पैसे लगेंगे, लेना हो तो लो, नहीं तो चलते बनो।"

बड़ी हिम्मत जुटाकर हामिद बोला- "तीन पैसे में दोगे?"

यह कहकर वह आगे बढ़ने लगा। उसे दुकानदार की घुड़कियों का डर था। पर दुकानदार ने उसे बुलाकर तीन पैसे में चिमटा दे दिया।

चिमटा पाकर हामिद के पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। शान से उसे अपने कंधे पर रखकर वह अपने दोस्तों के पास पहुँचा।

साथी उसके चिमटे का मजाक बनाने लगे। हामिद ने अपने सटीक जवाबों से न केवल सबको निरुत्तर करा दिया वरन् सबको अपना अनुयायी भी बना लिया। यहाँ तक कि महमूद ने हामिद के साथ अपना केला भी साझा किया। यह सब चिमटे का ही प्रसाद था।

अपने घर पहुँचकर बच्चों ने अपने लाये खिलौने से खेलना शुरु किया। मिट्टी के खिलौने... भला ज्यादा देर कैसे टिकते, गिरे और टूट गए।

हामिद दौड़कर अमीना की गोद में चढ़ गया। अमीना उसे चिपटाकर प्यार करने लगी। तभी उसकी नजर चिमटे पर पड़ी, "अरे, यह चिमटा तुझे कहाँ मिला?"

"मैंने मोल लिया है।"

"कै पैसे में?"

"तीन पैसे में।"

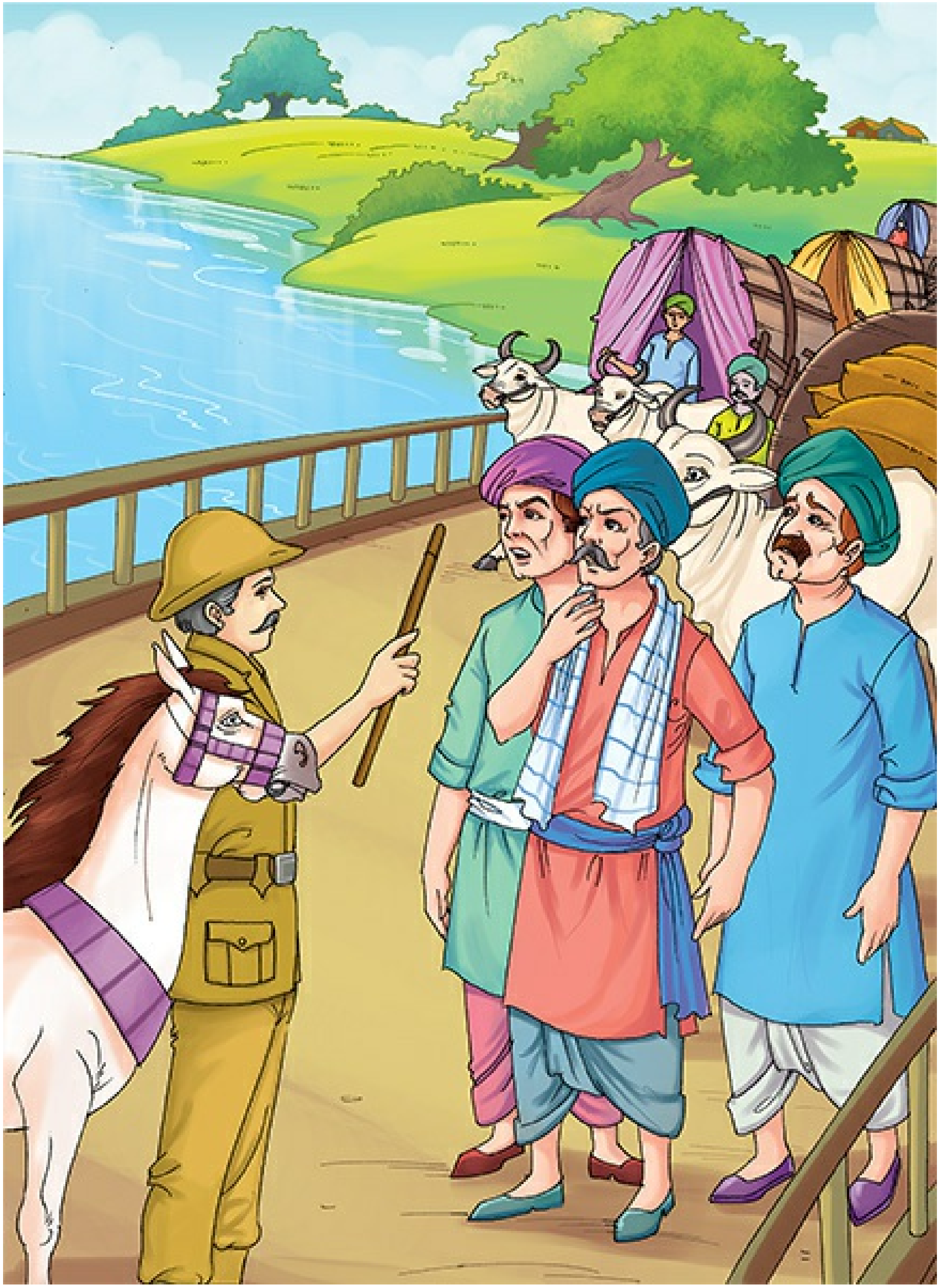
"न कुछ खाया न पीया। सारे मेले में तुझे और कुछ न मिला, यह लोहे का चिमटा उठा लाया है।" अपराधी भाव से डरता हुआ हामिद बोला, "तुम्हारी उंगलियाँ रोटी सेंकने में जल जाती थीं इसीलिए मैं ले आया।"

अमीना की आँखें स्नेह के अश्रुओं से छलक पड़ी इस नन्हीं सी उम्र में मिठाई और खिलौने छोड़कर इसने मेरे लिए चिमटा खरीदा... कैसे अपनी इच्छाओं पर इसने अंकुश रखा होगा... अमीना पलभर के लिए बालिका अमीना बन गई और बालक हामिद मानों बूढ़ा हामिद बन गया हो। आखिर उसने इस कच्ची उम्र में भी इतनी समझ का काम किया था। अमीना के नयन बह रहे थे पर हाथ और मुँह से हामिद के लिए दुआ ही निकल रही थी।

नमक का दारोगा

यह बात उन दिनों की है जब अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसी का प्राबल्य था। तभी ईश्वरप्रदत्त वस्तु 'नमक'का एक नया विभाग बना। निषेध् ने छल-प्रपंचों को जन्म दिया और चोरी-छिपे नमक का व्यापार होने लगा। अपने सर्वसम्मानित पदों का परित्याग कर लोग दारोगा पद के लिए लालायित होने लगे।

एक वृद्ध मुंशी जी थे। उनके पुत्र मुंशी वंशीधर अपनी शिक्षा समाप्त कर रोजगार की खोज में थे। उनके अनुभवी पिता ने अपने जीवन भर की कमाई- अपना ज्ञान दर्शन उन पर उंडेला- "बेटा! घर की दुर्दशा तुमसे छिपी नहीं है। ऋण के बोझ से दबे हैं हम। जवान लड़कियां हैं, मैं ठहरा कगारे का वृक्ष, न जाने कब गिर पडूं। अब तुम ही घर के मुख्तार (मालिक) हो।"



नौकरी में ओहदे को मत देखना, यह तो पीर का मजार है। निगाह तो चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। काम ऐसा ढूंढना जिसमें ऊपरी आय हो क्योंकि वह बटता हुआ स्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन में वृद्धि नहीं होती है पर ऊपरी आमदनी ईश्वर की देन है, उसी से बरकत होती है। आवश्यकता और अवसर को देखते हुए ही काम करना चाहिए, आगे तुम

स्वयं ही समझदार हो- मेरी यही बातें गांठ बांध् लो- जीवन भर की कमाई है।”

पिता जी से आशीर्वाद और उपदेश लेकर आज्ञाकारी पुत्र वंशीधर घर से चल पड़े। इस विशाल संसार में धैर्य उनका मित्र, बुद्धि उनकी पथ-प्रदर्शक और आत्मावलम्बन ही उनका सहायक था। भाग्य ने साथ दिया और उन्हें नमक विभाग के दारोगा के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। अच्छा वेतन और ऊपरी आय की सीमा ही न थी।

मुंशी वंशीधर को कार्यभार संभाले छह महीने बीत चुके थे। अपनी व्यवहार कुशलता से उन्होंने सबको मोह लिया था और विश्वासपात्र बन चुके थे। सर्दियों की रात थी। दारोगा जी किवाड़ बंद किए मीठी नींद का आनंद ले रहे थे। दफ़्तर से एक मील पूर्व यमुना बहती थी और उस पर पुल बना हुआ था। अचानक गाड़ियों की गड़गड़ाहट से उनकी नींद खुल गई।

इतनी रात यह शोर कैसा... अवश्य कोई गड़बड़ है। तुरंत वर्दी पहनी, तमंचा लिया और घोड़े पर सवार पुल पर पहुँच गए। डांटकर पूछा- “किसकी गाड़ियां हैं?”

कुछ पल सन्नाटा रहा, कानाफूसी हुई फिर धीरे से किसी ने कहा- ‘पंडित अलोपीदीन की।’

‘कौन पंडित अलोपीदीन?’

मुंशी वंशीधर चौंक पड़े। पंडित अलोपीदीन इस इलाके के प्रतिष्ठित जमींदार थे। लाखों रुपए का लेन-देन, लंबा-चौड़ा व्यापार, छोटे-बड़े सभी उनके ऋणी, बड़े चलते-पुरजे, अंग्रेज अफसर उनके मेहमान हुआ करते थे।

वंशीधर ने पूछा- ‘गाड़ियां कहाँ जाएंगी?’

उत्तर मिला- ‘कानपुर।’

पर यह पूछने पर कि गाड़ियों में क्या है? सन्नाटा छाया रहा। उत्तर न मिलने पर पुनः जोर से बोले- ‘क्या तुम सब गूंगे हो? गाड़ियों में क्या है?’

इस बार भी उत्तर न मिला। वह स्वयं गाड़ी के पास गए और टटोला तो नमक के डेले लदे पाए।

पंडित अलोपीदीन के पास इस आकस्मिक आपदा की बात पहुँची। मंझे हुए खिलाड़ी थे। लक्ष्मी पर अखंड विश्वास करने वाले, बड़ी ही निश्चिंतता पूर्वक लिहाफ ओढ़े हुए दारोगा जी के समक्ष उपस्थित हुए और बोले- ‘बाबू जी आशीर्वाद! कहिए हमसे ऐसा क्या अपराध् हुआ है जो गाड़ियां रोक दी गई हैं? हम ठहरे ब्राह्मण... आपकी कृपा दृष्टि रहनी चाहिए।’

वंशीधर ने रुखाई से कहा, ‘सरकारी हुक्म?’

पंडित अलोपीदीन ने हंसकर कहा, ‘हम न सरकार को जानते हैं न सरकारी हुक्म को हमारे सरकार तो आप ही हैं। हमारा आपका तो घर का मामला है। आपने क्यों कष्ट उठाया, मैं तो आ ही रहा था। इधर से हम जाएं और देवता को भेंट न चढ़ाएं...’

वंशीधर कड़ककर बोले- ‘हम उन नमक हरामों में से नहीं हैं जो कौड़ियों पर अपना ईमान बेचते फिरते हैं। आप हिरासत में हैं और आपको कायदे से चलना होगा। जमादार बदलूसिंह! तुम इन्हें सिरासत में ले चलो, मैं हुक्म देता हूँ।’

अलोपीदीन को धन की शक्ति पर पूरा भरोसा था। मुख्तार से बोले- 'लाला जी! एक हजार का नोट बाबू साहब को भेंट करो।' वंशीधर- 'एक हजार नहीं, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्ग से हटा नहीं सकते।'

अलोपीदीन स्तंभित... गाड़ीवानों में हलचल मच गई। बदलूसिंह आगे तो बढ़ा पर उनके रोब के आगे उसे हाथ पकड़ने का साहस न हुआ। पंडित जी ने धर्म के द्वारा धन का निरादर पहली बार देखा था, सोचा अभी उद्दंड लड़का है, जवानी का जोश है, माया-मोह के जाल में फंसा नहीं है इसलिए शायद झिझक रहा है। दीन भाव से बोले, 'बाबू साहब, ऐसा न कीजिए, हम मिट जाएंगे। इज्जत धूल में मिल जाएगी। हम आपसे अलग थोड़े ही हैं। हमारा अपमान करके आपको क्या मिलेगा?'

वंशीधर- 'हम ऐसी बातें नहीं सुनना चाहते।'

धर्म की इस बुद्धिहीन दृढ़ता और देव-दुर्लभ त्याग पर अलोपीदीन का मन बहुत झुंझलाया। दोनों शक्तियों में संग्राम होने लगा। धन ने अपना आक्रमण शुरू किया। एक से पांच, पांच से दस, दस से पंद्रह, नौबत चालीस हजार तक पहुँची पर धर्म ने धन को पैसे तले कुचल दिया। अलोपीदीन को हथकड़ियां पहननी ही पड़ीं।

दूसरे दिन जब अभियुक्त अलोपीदीन, कांस्टेबलों के साथ हाथ में हथकड़ियां डाले, लज्जा से गर्दन झुकाए, अदालत पहुँचे तो चारों ओर हलचल मच गई। अधिकारी, अरदली, चौकीदार, वकील मुख्तार सभी लोग चारों ओर से दौड़े। मानो वह वनराज हों और सारे सेवक। फिर क्या था- वकीलों की सेना तैयार हो गई। न्याय के मैदान में धर्म और धन में युद्ध ठन गया।

मुकदमा शीघ्र ही समाप्त हो गया। पंडित अलोपीदीन के विरुद्ध दिए गए प्रमाण गलत और भ्रमात्मक सिद्ध हुए। इतने बड़े व्यक्ति, थोड़े से लाभ के लिए, ऐसा दुस्साहस करें यह नहीं हो सकता था। नमक के दारोगा मुंशी वंशीधर की उद्दंडता और विचारहीनता के कारण एक भलेमानुस को कष्ट झेलना पड़ा। नमक से हलाली ने उनकी बुद्धी को भ्रष्ट कर दिया था।

आज वंशीधर को एक विचित्र अनुभव हुआ था। उनकी नजरों में अब लंबी-चौड़ी उपाधियां, लंबे चोगे वाले ये वकील आदर के पात्र नहीं रहे थे। उन्होंने धन से बैर लिया था, मोल भी चुकाना ही था, सो सप्ताह बीतते-बीतते नौकरी से निकालने का पत्र आ गया। शोक और खेद से व्यथित होकर, घर पहुँचे। बूढ़े मुंशी जी तो कुड़बुड़ा ही रहे थे। पत्नी ने भी मुंह फेर लिया।

सप्ताह बीता। एक दिन संध्या समय सुसज्जित रथ द्वार पर रुका और उसमें से पंडित अलोपीदीन उतरे। बूढ़े मुंशी जी ने दौड़कर अभिवादन किया, और अपने ही पुत्र को कपूत कहकर उनसे क्षमा याचना की। वंशीधर भी आ गए। अलोपीदीन ने वंशीधर से कहा-

'दारोगा जी, उस रात आपने अपने अधिकार बल से मुझे हिरासत में लिया था, आज मैं अपनी इच्छा से आपकी हिरासत में आया हूँ। मैंने हजारों रईस, अमीर देखे, हजारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा पर हराया तो आपने ही। मैंने सबको धन का गुलाम बनाकर छोड़ दिया। आज्ञा दीजिए तो कुछ विनय करूं।'



अलोपीदीन ने एक स्टाम्प लगा हुआ पत्र निकाला और वंशीधर के सामने रखकर बोले- 'इस पद को स्वीकार कीजिए। इस पर अपना हस्ताक्षर कर दीजिए। मैं ब्राह्मण हूँ, जब तक मान न रखिएगा, मैं द्वार से न हटूंगा।'

पत्रा पढ़कर मुंशी वंशीधर की आँखें डबडबा उठीं। अलोपीदीन ने अपनी सारी जायदाद का

स्थायी मैनेजर उन्हें नियुक्त किया था। छह हजार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च, सवारी के लिए घोड़ा, रहने को बंगला, नौकर-चाकर मुफ्त। कम्पित स्वर में बोले- 'मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि आपकी उदारता की प्रशंसा कर सकूं। मैं ऐसे उच्च पद के योग्य नहीं हूँ।'

अलोपीदीन हंसकर बोले- 'मुझे अभी अयोग्य मनुष्य की ही जरूरत है।'

वंशीधर को कलम पकड़ाते हुए बोले- 'मुझे विद्वत्ता, योग्यता, मर्मज्ञता, अनुभव या कार्य कुशलता किसी की आवश्यकता नहीं है। इन गुणों के महत्त्व को खूब जानता हूँ। सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दिया है जिसके सामने योग्यता और विद्वत्ता भी फीकी है। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही उद्दंड, कठोर परंतु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाए रखे। अब बस आप हस्ताक्षर कर दीजिए।'

वंशीधर ने डबडबायी आँखों से पंडित जी की ओर भक्ति और श्रद्धा से देखा और कांपते हाथों से हस्ताक्षर कर दिए। अंततः धर्म की विजय हुई।

पंडित अलोपीदीन ने प्रफुल्लित मन से वंशीधर को गले लगा लिया।

MAPLE KIDS

मुंशी प्रेमचंद हिन्दी भाषा के महान् कहानीकार के रूप में विख्यात हैं। हिन्दी साहित्य को आधुनिक रूप प्रदान करने में उनका बहुत बड़ा हाथ है। उनकी मर्मस्पर्शी कहानियां समाज के हर वर्ग को छूती हैं।

प्रेमचंद की कहानियों में भावनाओं तथा नैतिक मूल्यों का बखूबी चित्रण मिलता है। 'ईदगाह' में चाहे दादी 'अमीना' के लिए पोते 'हामिद' का प्रेम हो या फिर 'पंच परमेश्वर' में पंच की कुर्सी पर बैठने पर जुम्मन मियाँ का न्याय के प्रति भाव हो...

बच्चों को ध्यान में रखकर यहाँ प्रेमचंद की कुछ कहानियों को संक्षेप में, सरल भाषा में आकर्षक चित्रों के साथ सजाकर प्रस्तुत किया गया है। बच्चे इसे पढ़कर आनंद लें... यही प्रयास है।



e-book available

MAPLE PRESS PRIVATE LIMITED